सहजानंद शास्त्रमाला

परीक्षामुखसूत्र प्रवचन

भाग 16

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[१५, १६, १७ भाग]

प्रवक्ता :
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
श्री मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रबन्ध-सम्पादक
बैजनाथ जैन, ट्रस्टी सदस्य सहजानन्द शास्त्रमाला
पावगार बड़तला, सहारनपुर

प्रकाशक :
खेमचन्द जैन सर्राफ
मंत्री, सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

(षोडष भाग)

(प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी)

प्रमाणादर्थसंसिद्धिस्तदाभासाद्विपर्ययः ।
इति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्म सिद्धमल्पं लघीयसः ।।

आप्तवचनादिनिबन्धनमर्थज्ञानमागमः ।। ३–९९ ।।

आगमप्रमाणका स्वरूप—आप्तके वचन आदिक कारण है जिसमें ऐसा जो अर्थ ज्ञान है उसको आगम कहते हैं । इस सूत्रमें आगमप्रमाणका वर्णन है । आगम शब्दसे लोग शास्त्र समझते हैं और वह प्रायः ठीक है । शास्त्र भी प्रमाण है । पर शास्त्रसे मतलब क्या है । शास्त्रमें लिखी हुई स्याही या शब्दोंका आकार ये प्रमाण हैं क्या ? अरे प्रमाण तो ज्ञान होता है ऐसा सर्वप्रथम ही कहते आये हैं अज्ञान प्रमाण नहीं होता । तब निष्कर्ष क्या निकला कि उन शास्त्रोंके शब्दोंका अध्ययन करके अध्येता पुरुषको जो अपने मनमें ज्ञान जगता है, वस्तुस्वरूपके सम्बन्धमें प्रकाश होता उसे आगम कहते हैं । साथ ही यह भी समझना चाहिये कि किसी अन्य संकेतसे भी वस्तुस्वरूपके बारेमें ज्ञान जगता है तो वह भी आगम कहा जाता है । आगमके द्वारा प्रणीत वचनको आगम वचन कहते हैं । आप्त नाम है सर्वज्ञदेवका । सर्वज्ञदेवकी दिव्यध्वनिकी परम्परासे जो वचन चले आये हैं उन्हें आप्त वचन कहते हैं, आप्त शब्दका सीधा अर्थ है पहुँचा हुआ, पाया जा चुका । जो महापुरुष पहुचा हुआ है अर्थात् पूर्ण अधिकारी है निर्दोष है उसे आप्त कहते हैं । आप्तके द्वारा कहे गए वचनोंको आप्त वचन कहते हैं । सो आप्तके वचनके कारणसे अर्थज्ञान हुआ और हाथ संज्ञा आदिकके कारण से भी अर्थ ज्ञान होता है ।

सूत्रोक्त शब्दोंकी सार्थकता—वह आगम इस सूत्रमें तीन तो पद हैं आप्त-वचनादिनिबन्धनं, अर्थज्ञानं, आगमः । इनमेंसे यदि केवल अर्थज्ञान आगमः इतना ही कहा जिसका अर्थ होता कि पदार्थके ज्ञानको आगम कहते हैं । तो इतना कहनेपर प्रत्यक्ष आदिकामें भी यह लक्षण चल जाता है क्योंकि प्रत्यक्ष ज्ञानसे भी तो पदार्थोंका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञान होता है। इस कारण कहना पड़ा कि आप्तके वचनादिक कारणसे हुए अर्थ ज्ञान को आगम कहते हैं। सूत्रमें केवल आप्त वचन ही शब्द दिया जाता आदिका प्रयोग नही किया जाता—केवलिवचन निबंधन इतने ही शब्द कहे जाते तो वचन तो अटपट पुरुषोंके भी निकलते हैं। सोई हुई दशामें, उन्मत्त दशामें, भी वचन निकलते हैं सो उससे फिर जो ज्ञान हुआ वह ज्ञान भी आगमप्रमाण कहलाता। लेकिन उस दोषको दूर करनेके लिए आप्त शब्द दिया हैं। यदि केवल आप्त वाक्य निबंधनं ज्ञानं इतना ही कहते, तो शब्द सुननेसे शब्दका ज्ञान हुआ। इसे कहते हैं शब्द सम्बन्ध। प्रत्यक्ष ज्ञान। तो इसको ही आगम प्रमाण मान लिया जाता। इसलिये "अर्थ" शब्द डाला गया है। इस तरह इन सभी शब्दोंमें सार्थकता है। तब आगम प्रमाणका लक्षण सही यह बना कि सर्वज्ञ देवके वचन आदिक कारणोंसे उत्पन्न हुआ जो अर्थ ज्ञान है उसे आगम कहते हैं। वहां आदि शब्द देनेसे हस्त संज्ञा संकेत आदिकका ग्रहण हो जाता है। आप्तकी वाणीको ऋषि संत आचार्य जन भी कहते हैं और शास्त्रोंमें लिखते हैं। उन उपदेशोंमें जो उनके संकेत आदिक हैं, हस्त आदिकके इशारे हैं उनसे भी अर्थ ज्ञानके समझनेमें मदद मिलती है। इससे अक्षर श्रुतज्ञान और अनक्षर श्रुतज्ञान दोनों का संग्रह हो जाता है।

अर्थज्ञानसे अन्यापोह व शब्द संदर्भकी प्रमाणताका परिहार—इस सूत्रमें अर्थ ज्ञान शब्द देनेसे एक यह भी परिज्ञान होता है कि अर्थ ज्ञान प्रमाण होता हैं। अन्यापोह ज्ञान प्रमाण नही होता। क्षणिकवादी लोग अन्यापोह मानते हैं, अर्थात् जैसे गाय कहा तो गाय शब्दके सुननेसे सीधा गायका ज्ञान नही होता उनके सिद्धान्तसे किन्तु गाय सुनकर यह ज्ञान होता है कि घोड़ा बकरी आदिक दुनियाभरके ये सब कुछ नहीं हैं इसे कहते हैं अन्यापोह। जिसका नाम लिया है उसको छोड़कर बाकी अन्य कोई पदार्थ न होना इसको कहते हैं अन्यापोह। अन्यापोह ज्ञान आगम प्रमाण नही हो सकता। यह बात बतानेके लिये अर्थज्ञान शब्द दिया है। अन्यापोह क्यों प्रमाण नही है, इसका वर्णन विस्तार पूर्वक आगे करेंगे। यहाँ अत्यन्त सीधा समझ लेना कि सबके अनुभवमें यह बात है कि गाय शब्द कहते ही सीधा गायका बोध होता है। अन्यापोहके ढगसे कोई पुरुष ज्ञान नही करता, किन्तु उसके सम्बन्धमें जब ऊहापोह करते हैं तो अन्य व्यावृत्तिके भी विचार बनते हैं। इससे अन्यापोह ज्ञानका नागम प्रमाण न बने इसलिये अर्थ ज्ञान शब्द दिया है। अथवा केवल शब्दकी रचना से ही आगम प्रमाणपना न आये इसलिये अर्थज्ञान शब्द दिया है शब्द स्वयं आगम प्रमाण नही है। जो शास्त्र रचे हुए हैं जिनमें बहुत समीचीन विवेचन भरा हुआ है वे शब्द भी साक्षात् आगमप्रमाण नही हैं। आगमप्रमाण तो उन शब्दोंके निमित्तसे जो शुद्ध ज्ञान हुआ है, पदार्थोंके स्वरूप सम्बन्धी ज्ञान हुआ है वह है आगमप्रमाण। पर उस प्रमाण ज्ञानके कारणका कार्य होनेसे वचनोंको भी प्रमाण कह दिया जाता है। इस आगम प्रमाणका मूल कारण है सर्वज्ञदेवका ज्ञान। उसका कार्य है शब्द। तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उन शब्दोंमें भी उपचारसे प्रमाणपना कहा जाता है। साक्षात् तो वस्तु विषयक जो ज्ञान है जो कि सर्वज्ञ देवके वचन परम्पराके निमित्तसे उत्पन्न हुआ है वह प्रमाण है।

आप्तत्वके सम्बन्धमें शंका समाधान—अब यहां शंकाकार कहता है कि सर्वज्ञ कोई होता ही नही है। ऐसा कोई दृष्टा नहीं है, जो अतीन्द्रिय अर्थको भी देख ले। जो पदार्थ इन्द्रियगोचर नहीं है सूक्ष्म है, परमाणु आदिक हैं उनका भी कोई परिज्ञान करले ऐसा कोई पुरुष नहीं होता। तो जब अतीन्द्रिय पदार्थकी दृष्टाका ही अभाव है तो कोई सर्वज्ञ हो ही नहीं सकता है तो यह कहना व्यर्थ है कि आप्तके वचनके कारणसे अर्थ ज्ञान होता है। किन्तु अपौरुषेय आगमके कारणसे आगमज्ञान होता है। अथवा अपौरुषेय आगम वेद ही स्वयं प्रमाणभूत है। उत्तर देते हैं कि अतीन्द्रिय पदार्थका जाननहार भगवान हुआ यह बात प्रमाण सिद्ध है। आत्माका स्वभाव है ज्ञान, किन्तु इस समय हम आप जीवोंके ज्ञानका परिपूर्ण विकास क्यों नही है। ज्ञानका कार्य जब जानना है और जाननेमें कोई प्रतिबंध नही, जो सत् हो उसे जाने। फिर यह ज्ञान समस्त पदार्थोंको जानता क्यों नही है इसलिए नही जानता कि इसपर दोषका आवरण छाया है। रागादिक दोष अज्ञानका आवरण होनेसे हम आपका ज्ञान समस्त पदार्थोंको नही जान पा रहा है। किन्तु यह तो यहाँ ही देखा जा रहा कि किसीमें दोष कम हैं, आवरण कम हैं और ज्ञानका विकास अधिक है। तो जब औपाधिक चीजें कम कम होती नजर आ रही हैं तो उससे सिद्ध है कि यह दोष अज्ञान, आवरण औपाधिक संसर्ग कहीं बिल्कुल भी समाप्त हो जाते हैं। जहाँ औपाधिक सम्पर्क पूर्णतया समाप्त हो जाता है उसे कहते हैं निर्दोष पुरुष। जब दोष समस्त दूर हो जाते हैं तो वहाँ ज्ञानका होता है परिपूर्ण विकास उसीको कहते हैं सर्वज्ञ। सर्वज्ञ है और जब तक वह सकल परमात्मा है अर्थात् शरीर सहित है तब तक उस की दिव्यध्वनिसे भव्य जीव प्रतिबोधको भी प्राप्त होते रहते हैं। उनको कोई विशिष्ट पुरुष गणधर गणोंका ईश विशिष्ट होता है जो उस दिव्यध्वनिको भली प्रकार झेल लेता है और फिर उससे समस्त ज्ञान करके फिर वह गणधर देव अन्य आचार्योंको व्याख्यान किया करते हैं। इस परम्परासे जो अर्थ ज्ञान चला आ रहा है वह आगम प्रमाण कहलाता है। सो अतीन्द्रिय अर्थका देखने वाला भगवान है यह बात युक्तिसे सिद्ध है और इस सम्बन्धमें पहिले बहुत वर्णन किया भी जा चुका है इसलिए संदेह न करना कि अतीन्द्रिय ज्ञान पदार्थका देखने वाला कोई सर्वज्ञदेव नही है, सर्वज्ञ है।

आगमके अपौरुषेयत्वकी सिद्धि—दूसरी बात यह है कि आगमको अपौरुषेय सिद्ध नही किया जा सकता। किसी पुरुषके द्वारा रचे ही नही गए। यह शब्द वाणी, यह शास्त्र रचना यह अनादिसे स्वयं सिद्ध चली आ रही है यह बात सिद्ध नही होती। यदि आगमको अपौरुषेय कहा जा रहा है तो यह तो बतलावो कि वह अपौरुषेयपना किसको कहा जा रहा। शास्त्रमें तो पद मिलता, वाक्य मिलता, वर्ण मिलता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो क्या पदोंको अपौरुषेय कहा जाता अथवा वाक्योंको या वर्णोंको अपौरुषेय माना जा रहा। पद और वाक्योंको अपौरुषेय कहा जा रहा यह बात तो घटित नहो होगी, क्योंकि आगमके पद और वाक्य पौरुषेय ही होते हैं क्योंकि पद और वाक्यरूप होने से। जैसे महाभारत आदिक अनेक पुराण हैं उनमें पद और वाक्य हैं, वे किसी पुरुष के द्वारा रचे गए हैं तो वेदमें भी जिसे आगम माना जा रहा है उसका भी पद और वाक्य पौरुषेय होता है।

आगमके अपौरुषेयत्वकी प्रत्यक्षसे असिद्धि—वेदमें अपौरुषेयपना कैसे बन जायगा ? वेदमें अपौरुषेयताका साधक प्रमाण नहीं है यह बात ठीक है अन्यथा प्रमाण बतावो ? कौनसा प्रमाण है जो आगममें अपौरुषेयता सिद्ध करदे ? क्या प्रत्यक्ष प्रमाण अपौरुषेय सिद्ध कर देगा ? या अनुमान प्रमाण अपौरुषेय सिद्ध करेगा? या अर्थापत्ति आदिक अन्य कोई प्रमाण आगमको वेदको अपौरुषेय सिद्ध करेगा ? प्रत्यक्ष तो अपौरुषेयपना सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं है क्योंकि प्रत्यक्ष ज्ञानसे अपने शब्द का ज्ञान कर लिया इतने ही मात्रसे प्रत्यक्ष ज्ञान चरितार्थ अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञानका कार्य हो चुका शब्दस्वरूपमात्र ग्रहण करनेमें ही प्रत्यक्ष ज्ञानका व्यापार हुआ है। वह प्रत्यक्ष पौरुषेयत्व अथवा अपौरुषेयत्व विषयको ग्रहण नहीं करता और फिर अपौरुषेयताका तो अर्थ है अनादि सत्त्व स्वरूप। जो अनादि कालसे सत्त्व है उसको ही तो अपौरुषेय कहते हैं। वह इन्द्रियजन्य ज्ञानसे कैसे माना जायगा ? इन्द्रियां प्रतिनियत, रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्दको विषय किया करती हैं। इन्द्रियोंका अनादि कालसे सम्बन्धका अभाव है। अर्थात् अनादिकाल और इन्द्रिय इन दोनोंका सम्बन्ध नहीं भिड़ता। तो जब अनादि कालके साथ इन्द्रियका सम्बन्ध ही नहीं है तो अनादि काल से यह आगम है इसके साथ प्रत्यक्षका सम्बन्ध ही कैसे बन सकेगा ? और यों जबरदस्ती सम्बन्ध बना डालेंगे प्रत्यक्षका अनादिकालके साथ तो उस ही तरह अनुष्ठान किया जाने योग्य है। इस रूपसे जो अनागत काल सम्बन्धी पुण्यादिकका स्वरूप बताया जाता है उससे भी प्रत्यक्षका सम्बन्ध बन जाना चाहिये और बन जाय सम्बन्ध तो फिर धर्मज्ञका प्रतिषेध कैसे किया जा सकेगा ? अर्थात् हमारा प्रत्यक्ष ज्ञान धर्मज्ञ भी हो गया। अपौरुषेयवादी पुरुष किसी महापुरुषको बहुत बड़ा ऊँचा ज्ञान वाला मान भी लेता है, जिसे वह सर्वज्ञ शब्दसे भी कह सकता तो उसके सर्वज्ञपनेका अर्थ इतना है कि साधारणजनोंसे बहुत कुछ अधिक जाना है और उन ज्ञानोंको बटोर बटोरकर संचय कर करके यह सर्वज्ञता मिली है फिर भी वह धर्मज्ञ नहीं बनता। धर्मज्ञताका सम्बन्ध तो वेदसे है आगमसे है। अब यहां प्रत्यक्षको अपौरुषेयत्वसे सम्बन्धित जब बनाया है तो इसका अर्थ है कि प्रत्यक्षका अनादिकालके साथ सम्बन्ध हुआ है। तो जब प्रत्यक्षका भी अनादिकालसे अतीन्द्रिय अर्थसे सम्बन्ध होने लगे तो धर्मादिक स्वरूपके साथ भी उसका सम्बन्ध बन बैठेगा। फिर धर्मज्ञका निषेध करना कि कोई चाहे ज्ञानको संचित करके सर्वज्ञ भी बन जाय, पर धर्मज्ञ नहीं बन सकता।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह कहना कैसे ठीक बैठेगा ? इससे सिद्ध हुआ कि प्रत्यक्षज्ञान वेदके अपौरुषेयत्वको सिद्ध करनेमें समर्थ नही है। प्रत्यक्षज्ञान तो शब्दका ग्रहण करले इतने ही मात्रमें चरितार्थ हो जाता है।

वेदके अपौरुषेयत्वके साधक अनुमानका अभाव—वेदकी अपौरुषेयताका साधक अनुमान भी नही हो सकता, क्योंकि उस अनुमानको तुम क्या हेतु देकर बनाओगे ? क्या यह हेतु दोगे कि कर्ताके स्मरणका अभाव है इस कारण वेद अपौरुषेय है अथवा ऐसा अनुमान बनाओगे कि चूंकि वेदका अध्ययन परम्परासे चला आ रहा है वह वेदाध्ययन शब्दसे वाच्य है इस कारण वेद अपौरुषेय है। क्या यह अनुमान बनाओगे कि वेद किसी भी कालमें बनाया नहीं गया, क्योंकि काल होनेसे। जैसे वर्तमान काल। इन तीन विकल्पोंमेंसे यदि तुम पहिला विकल्प कहोगे कि कर्ताका अस्मरण है इस कारणसे वेद अपौरुषेय है तो कर्ताका अस्मरण है इसका अर्थ क्या है ? क्या कर्ताके स्मरणका अभाव है अथवा उसका कर्ता स्मरणमें आ ही नही रहा है इन दोनोंमेंसे क्या अर्थ है कर्ताके अस्मरणका ? यदि कहो कि कर्ताके स्मरणका अभाव है इस कारण वेद अपौरुषेय है तो ऐसा कहनेमें व्यधिकरणासिद्ध हेतु हो गया। व्यधिकरण हेतु उसे कहते हैं कि हेतु तो पाया जाय किसीमें और साध्य सिद्ध किया जाय और कही तो ऐसी ही बात यहां बन गयी कि कर्ताके स्मरणका अभाव तो है आत्मामें और अपौरुषेयत्व सिद्ध किए जा रहे वेदमें तो यह व्यधिकरण है। भिन्न भिन्न इसमें अधिकरण वाले साध्य साधन हैं। तो कर्ताका स्मरण न होनेसे कर्ताके स्मरणका अभाव होनेसे वेद अपौरुषेय है यह सिद्ध नही होता। यदि कहो कि कर्ताके अस्मरण का अर्थ यह है कि उसके कर्तापनका स्मरण हां नहीं किया जा सक रहा है तो उत्तर में कहते हैं कि इसमें कोई दृष्टान्त न मिलेगा क्योंकि जितनी भी नित्य वस्तुवें हैं वे न स्मर्यमाणकर्तृक हैं और न अस्मर्यमाणकर्तृक है अर्थात् जिसका कर्ता स्मरण भी नहीं आ रहा। न तो ऐसे पदार्थ होते हैं और उनका कर्ता स्मरणमें आ रहा न ऐसे नित्य पदार्थ होते हैं किन्तु जो नित्य होते हैं वे अकर्तृक होते हैं अर्थात् कर्तारहित होते हैं, और फिर अस्मर्यमाणकर्तृक ऐसा विशेषण देना व्यर्थ है। क्यों व्यर्थ है कि देखो—कर्ता के होनेपर ही स्मरण होता है और अस्मरण होता है कर्ता जहाँ होता ही नहीं उसका न स्मरण होता और न उसकी भूल होती। जैसे गधेके सींग। गधेके सींग कुछ है ही नही तो न तो उसका कोई ख्याल करना है और न कोई उसे भूलना है। जैसे कोई चीज रखी हो और भूल गयी तो भूलना भी तो सत्का होता है और ख्याल करना भी सत्का होता है। जब अकर्तृक है कोई चीज तो उसके कर्ताका स्मरण भी क्या और भूल भी क्या ? इस कारण अस्मर्यमाणकर्तृक ऐसा विशेषण कहना व्यर्थ है। यदि कहो कि हम तो इस अनुमानमें अकर्तृक ही कह रहे हैं तो स्मर्यमाण ग्रहण करना ही व्यर्थ है। तथा अकर्तृकपनेका यहां व्यभिचार होता है पुराने टूटा कुवां दूकान आदिकके साथ, क्योंकि कुवां मकान आदिकका कर्ताका स्म-

http://sahjanandvarnishastra.org/

रण नहीं चल रहा कि किसने बनाया। जो बहुत पुराने कुवां आदि है, वे अपौरुषेय नहीं है। और कर्ताका स्मरण भी नहीं है।

सम्प्रदायके अविच्छेदसे प्रमाणपनेका विचार—यदि कहो कि हम इस हेतुको पूरा यों कहेंगे, सम्प्रदायका विच्छेद न होनेपर स्मर्यमाणकर्तृक होना, तो वेद अपौरुषेय है क्योंकि सम्प्रदायका अविच्छेद होनेपर इसका कर्ता स्मरणमें नहीं आ रहा। यदि ऐसा हेतु कहोगे तो उसमें भी अनेकान्त दोष होगा क्योंकि ऐसे बहुतसे पद वाक्य हैं जिनकी परम्परा नष्ट नहीं हुई जिनका सम्प्रदाय समाप्त न हुआ, पर प्रयोजन न होनेसे उनके कर्ताका स्मरण किया जा रहा। जैसे वटके प्रत्येक पेड़पर वैश्रवण रहता है अथवा चबूतरे चबूतरेपर ईश्वर रहता है, पर्वत पर्वतपर राम रहता है आदिक अनेक बातें जो पद वाक्य चले आ रहे हैं वे बराबर सम्प्रदायका अविच्छेद रखते हुए चले आ रहे हैं किन्तु उनके कर्ताका स्मरण कहां किया जा रहा? किसीने कर्ताकी खोजका यत्न भी नहीं किया, क्योंकि कुछ प्रयोजन ही नहीं है। और, यह पदवाक्य अपौरुषेय है क्या? शङ्काकारने स्वयं भी ऐसे वाक्योंको अपौरुषेय नहीं माना है फिर तुम्हारा यह हेतु कि इसका कर्ता स्मरणमें नहीं आ रहा इस कारण वेद अपौरुषेय है, यह हेतु असिद्ध है क्योंकि पौराणिक ऋषिसंत जन वेदको ब्रह्मकर्तृक मानते हैं। पौराणिकोंका कथन है कि ब्रह्माके मुखसे वेद निकले हैं तब कर्ता बन गया कि नहीं? अथवा कहते हैं कि प्रत्येक मनुके समयमें अन्य अन्य श्रुतियां नये नये वेद बनाये जाते हैं तो इससे कर्ताका स्मरण हो गया ना। अथवा सीधे भी शब्द लिखे हुए हैं जिससे प्रकट होता कि कोई वेदोंका कर्ता है। ऐसे बहुतसे वाक्य हैं जिनसे वेदोंके कर्ताका स्मरण होता है।

प्रामाण्यका कारण प्रामाणिकमूलता—यहां सोचा यह था शङ्काकारने कि अपौरुषेय माननेसे पूरी प्रमाणता आ जायगी लेकिन यह ध्यान न रखा कि अपौरुषेय होनेसे अकर्तृक होनेसे प्रमाणता आती है। यह तो नियम नहीं बनता, किन्तु सर्वज्ञ मूलमें कर्ता हो जिसका उस वचनमें प्रमाणता आती है यह परिपूर्ण नियम है। जिसका जिस ओर ढलाव हो जाता है वह उसको महत्त्व देता है। यहां अपौरुषेयवादी ने अतीन्द्रियार्थका ज्ञाता सर्वज्ञ आत्मा नहीं माना किन्तु वेदको, शास्त्रको अपौरुषेय कह कर सबका आधार माननेका यत्न किया। अरे किसी भी साधनसे चलकर कोई आत्मा यदि पूर्ण पवित्र विकसित न बन सके तो वह साधना ही क्या है? फिर धर्मसाधना ही क्या रही? धर्मसाधना किसलिए करनी चाहिये? आत्मा पूर्ण आनन्दमय बने, पूर्ण विकसित बने, उसका सर्व अभ्युदय हो, इसके लिए ही तो धर्मसाधन है। ऐसा यदि हो सकता है कोई तो इसका अर्थ यह है कि वह सर्वज्ञ बन गया। अब उस सर्वज्ञ की ध्वनिसे, उस सर्वज्ञके वचनसे जो बात चलेगी वह परम्परा प्रमाण है। तो शास्त्रका कर्ता मूलमें सर्वज्ञ हो तो वह प्रमाणभूत होता है, इस ओर तो दृष्टि नहीं गई

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और आगममें ही बहुत दृढ़ प्रमाणभूत माननेकी बात मनमें आयी, तब अपौरुषेयकी कल्पना की गई।

अङ्कित नामोंसे वेदके पौरुषेयत्वकी सिद्धि देखिये वेदोंमें जगह जगह ऋषियोंके भी नाम आ गये हैं, तो अपौरुषेय अनादि हो उसमें ये नाम कैसे आ सकते हैं। नाम आनेका अर्थ यह है कि जिनका नाम आया उनके समय वेद रचना हुई। उससे पहिले नहीं हुई। किसी ग्रन्थमें ऋषिजनोंका नाम आनेका और अर्थ ही क्या है जैसे स्मृतियोंमें पुराणोंमें ऋषियोंके नाम अंकित हैं इसी प्रकार कण्व पाण्डुऋषि, तैत्तिरीय, मण्डूक आदिक नाम वाले कुल वाले, परम्परा वाले जो नाम बताये हैं उससे यह सिद्ध हो रहा ना कि उनके कर्ताका स्मरण तो आ रहा। इस गोत्र वाले, इस गुरु परम्परा वाले इस वेदके रचयिता हैं। इस उपनिषदके रचने वाले हैं ऐसे कर्ताका स्मरण तो हो रहा। जिन ऋषियोंके नाम वेदमें आये हैं तो वे क्यों आये? क्या उन्होंने उसको बनाया इस कारणसे नाम आया है या उन ऋषियोंने उनको देखा है इस कारण नाम आया है, या उन ऋषियोंने उसका प्रचार किया, प्रकाश किया इस कारणसे नाम आया है? आखिर तीन विकल्पोंमेंसे कुछ तो होगा नाम आनेका कारण। यदि कहो कि उन ऋषियोंने बनाये हैं वे ग्रन्थ इस कारण उनका नाम आया है तो इससे साफ विदित हो गया कि वे अपौरुषेय नहीं हैं और उनका कर्ता बराबर स्मरणमें आ रहा है। यदि कहो कि उन ऋषियोंने वेदोंको किया तो नहीं किन्तु उन के द्वारा प्रकाशित किये गए इस कारण नाम वेदोंमें आया है। तो भला बतलावो कि जब नष्ट हुई शाखा अर्थात् उन वेदोंका कोई अध्याय नष्ट हो गया उसे कण्व आदिक ऋषियोंने देखा अथवा प्रकाशित किया तो सम्प्रदायका अविच्छेद कैसे रहा? जब कोई चीज नष्ट हो गई अब उसे दूसरे ऋषियोंने प्रकट की तो विच्छेद तो हो चुका और जिन ऋषियोंने उस प्रमाणभूत वेदको बनाया तो वे ऋषि अतीन्द्रिय पदार्थके दर्शी तो कहलाये। उसका भी निषेध कैसे करोगे? जो अतीन्द्रिय अर्थका दृष्टा हो सकता है वही तो ऐसे वेद आगमका प्रकाश करने वाला बन सकता है। तो यदि उन कण्व आदिक ऋषियोंके द्वारा वेद देखे गए अथवा प्रकाशित हुए हैं तो इससे दो बातें सिद्ध होती हैं—एक तो सम्प्रदायका विच्छेद हो गया, परम्परा न रही, उनके समयसे नई बात चली। दूसरे अतीन्द्रिय अर्थके देखने वालेका निषेध न हो सका। यदि कहो कि परम्परा तो बराबर बनी बनी रही, अनविच्छिन्न धारासे वेद तो बराबर बन चले आये उसे फिर किसी सम्प्रदायने देखा और प्रकाशित किया। किसी गुरु परम्पराने ऋषि संतने परम्परासे चले आये हुए वेदको ही देखा और उसे प्रकट किया। तब तो जितने उपाध्यायोंने, जितने विद्वानोंने वह शाखा देखी अथवा प्रकाशित की उन सबके नाम उसमें अंकित होना चाहिये थे वे क्यों नहीं हुये? नहीं हुए वे तो इसका अर्थ यह हुआ कि जो कुछ चला वाले बलवान ऋषि संत थे उन्होंने अपना नाम जोड़ दिया और शेष नामोंकी उपेक्षा करदी। तो कर्ता स्मरणमें नहीं आ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहा ऐसा कह करके वेदको अपौरुषेय सिद्ध नहीं किया जा सकता।

कर्तृस्मरणकी छिन्नमूलताका विचार – यह भी कहना उचित नहीं है कि वेदमें कर्ताका स्मरण छिन्नमूल है अर्थात् कर्ताके स्मरणका अब कारण नष्ट हो गया, कोई उसका स्रोत ही नही है। कारण था उसका अनुभव और अनुभव जो है वह कर्ताके स्मरणमे अथवा कर्ताके विषयमें नही चल रहा। यह बात यों अयुक्त है कि यह बतलावो कि कर्ताका स्मरण छिन्नमूल कैसे बन गया? छिन्नमूलका अर्थ यह भी है कि जिसकी मूल कट गयी, जड़ खतम हो गई उसका कोई कारण ही न रहा। तो वेदमें कर्ताका स्मरण छिन्नमूल क्या इस कारण हो गया कि प्रत्यक्षसे कर्ताका अनुभव नही हो पा रहा या इस कारण छिन्न मूल हो गया कि अन्य प्रमाणोंसे उसका अनुभव नही बन रहा? यदि कहो कि प्रत्यक्षसे कर्ताका अनुभव नहीं हो रहा इस कारणसे कर्ताका स्मरण छिन्नमूल है तो यह बतावो कि आपके प्रत्यक्षसे अनुभव नहीं हो रहा या सबके प्रत्यक्षसे अनुभव नही हो रहा? वेद आगमके कर्तावोंका क्या तुम्हारे प्रत्यक्षमें ही अनुभव नही हो रहा यह इष्ट है या सबके प्रत्यक्षका अनुभव नही हो रहा? यदि कहो कि आपके प्रत्यक्षसे अनुभव नही हो रहा तो दूसरे दार्शनिकोंके आगमोंमें भी कर्ताका ग्रहण करनेरूपसे आपके प्रत्यक्षकी प्रवृत्ति नही होरही। तो उन लोगोंके ग्रंथोंके कर्ताका भी स्मरण छिन्नमूल हो गया इस कारण दूसरेके ग्रंथोंके कर्ताका भी स्मरण नही हो रहा तो वह भी अपौरुषेय हो जायगा। यों कर्ताका स्मरण न हो पानेसे और आपके प्रत्यक्षमें अनुभव न हो पानेसे यदि अपौरुषेय बनता है तो सबके ग्रन्थ अपौरुषेय बन जायेंगे। यदि कहो कि दूसरोंके आगममें हमारा प्रत्यक्ष कर्ताको नहीं समझ पा रहा लेकिन वे स्वयं अपने अपने ग्रंथोंके कर्ता बता रहे हैं इस कारण उनका कर्ता स्मरणमें नही आ रहा ऐसी बात तो न रही। और इसी कारण दूसरोंके ग्रन्थ अपौरुषेय हो जायें सो बात भी नही रही। अपौरुषेयवादी कह रहा है कि दूसरोंके जो ग्रन्थ हैं उन ग्रन्थोंके कर्ताका हमें पता नही, हमारा प्रत्यक्ष उनके कर्ता को जानता नही लेकिन वे तो स्वयं कर्ता बता रहे हैं इसलिए हमारा हेतु अनेकान्तिक नही बन रहा। इसका उत्तर देते हैं कि दूसरे लोग अपने ग्रन्थका कर्ता मान रहे हैं तो दूसरोंका मानना तुम प्रमाण मानते हो कि नही। यदि दूसरोंका मानना तुम प्रमाण मानते हो तो दूसरे लोग वेदके बारेमें कर्ता मान रहे हैं यह भी उनकी बात मान लीजिये। तब यह कहना कि कर्ता स्मरणमें नही आ रहा इस कारण वेद अपौरुषेय हैं, यह बात तो सिद्ध न बनी।

अतीन्द्रियार्थ द्रष्टाके मूलसे प्रणीत वचनोंमें प्रमाणताका सीधा मंतव्य. अपौरुषेयका यदि इतना ही अर्थ करते कि साधारण पुरुषोंने उसे नहीं बनाया, तो यह बात मानी जा सकती थी और फिर दूसरा विषय छिड़ जाता। फिर उसमें जो सिद्धान्त माना गया है वह युक्तिसिद्ध अनुभवसिद्ध प्रतीतिसिद्ध है अथवा नही? फिर तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अन्य विषय छिड़ जाता। लेकिन वेदकी प्रमाणता मजबूत बनानेके लिए यह कहा कि किसीके द्वारा ये रचे ही नही गए, ये अनादिकालसे ही यों चले आ रहे। इसमें यह आपत्ति आ रही। प्रथम तो यह है कि जो बात अन दिसे चली आती रही वह सच्ची हो, प्रमाणभूत हो यह नियम नही बनता, क्योंकि मोह मिथ्यात्व खोटे उपदेश ये भी अनादिसे चले आ रहे हैं तो क्या ये सब भी प्रमाणभूत हो जायेंगे ? दूसरी बात यह है कि निर्मल सर्वज्ञ अतीन्द्रियार्थका देखने वाला आत्मा स्वीकार करले और फिर उस के सन्निधानसे ये सब आगम प्रकट हुए हैं ऐसा मान लेते तो इसमें प्रमाणताकी क्या बात थी ? फिर तो यही निहारना था कि ये वचन वास्तवमें सर्वज्ञ वीतराग भगवान की परम्परासे आए हुए हैं या अन्य किन्हीं साधारण जनोंके द्वारा रचे गए हैं ? खैर प्रकरण यह चल रहा है कि आगमका स्वरूप बताया गया था कि जो आप्तदेवके वचन आदिकके कारणसे अर्थज्ञान उत्पन्न हुआ है उसको आगम कहते हैं। उस लक्षणमें जिन्हें आप्त सर्वज्ञ परमात्मा, यह शब्द खटका उनकी ओरसे यह शङ्का चली कि आप्त अथवा सर्वज्ञ कोई नही है। आगम तो अपौरुषेय है। किसी भगवानके द्वारा प्रणीत नही है। उस सम्बन्धमें प्रश्नोत्तर होते हुए बात यहां तक आई कि यह नहीं कहा जा सकता कि कर्ताका स्मरण नही हो रहा, इस कारण वेद अपौरुषेय है।

कर्तामात्रके विवादसे भी कर्ताके अस्मरणकी प्रमाणताका अनिर्णय—अब शंकाकार कहता है कि भाई कर्ता विशेषमें विवाद हो उठा है। तो विवादग्रस्त कर्ता बतानेमें विवाद होनेसे कर्ताका स्मरण करना अप्रमाण है। जैसे कि लोग कहते हैं कि वेदका कर्ता हिरण्यगर्भ है। कोई कहता है कि वेदका कर्ता अष्टक आदिक ऋषि हैं। तो कर्ता विशेषमें विवाद होनेसे कर्ताका स्मरण ही अप्रमाण है। तो उत्तरमें कहते हैं कि भाई कर्ता विशेषमें यदि विवाद हो उठा है तो कर्ताविशेषका स्मरण ही तो अप्रमाण होगा, कर्ता सामान्यका स्मरण तो अप्रमाण न होगा। यदि कर्ता विशेष में विवाद हो उठनेसे कर्ता मात्रका स्मरण अप्रमाण बन जाय तो कादम्बरी आदिक ग्रन्थोंके भी कर्ता विशेषमें विवाद है अब भी कि वे ग्रंथ किसने बनायें हैं ? तो कर्ता-मात्रके स्मरणसे तुम स्मर्यमाणकर्तृक नही मानते तो कर्ताका स्मरण फिर इन ग्रंथोंके भी नहीं हो रहा। तो यह काव्यग्रन्थ भी अपौरुषेय बन बैठेगा। यदि कहो कि वेदमें तो कर्तामात्रमें भी विवाद है जैसे कि कर्ता विशेषमें विवाद कर रहे सो जब कर्तामात्र में भी विवाद है तब तो वेदके सम्बन्धमें कर्ताका स्मरण करना भी अप्रमाण हो गया, परन्तु कादम्बरी आदि काव्यग्रंथोंके तो कर्ताविशेषमें ही विवाद है कर्तामात्रमें नहीं सो वहां कर्ताका स्मरण प्रमाण है अतः अस्मर्यमाणकर्तृकत्व हेतुमें अनैकान्तिक दोष नहीं आता। समाधानमें कहते हैं मीमांसक नही करते इस तरह कर्तामात्रमें यदि विवाद होनेसे कर्ताका स्मरण अप्रमाण है तो उसी तरह कर्ताका अस्मरण भी क्यों नही अप्रमाण हो जायगा जब कर्तामात्रमें विवाद है तो विवादका लाभ दोनों जगह उठाया जा सकता है तो जैसे तुम कहते हो कि विवाद होनेसे कर्ताका स्मरण अप्रमाण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है तो वहां यह भी कहा जा सकता है कि विवाद होनेसे कर्ताका अस्मरण अप्रमाण है। यों कर्ताका अस्मरण अप्रमाण होनेसे "अस्मर्यमाणकर्तृकत्वात्" यह हेतु असिद्ध हो जायगा, पूर्ण असिद्ध नही भी मानोगे तो संदिग्धासिद्ध तो हो ही गया है। इस कारण कर्ताका अस्मरणरूप हेतुसे वेदकी अपौरुषेयताका साधक अनुमान नहीं बन सकता। अच्छा यही बताओ कि विशिष्ट उत्कृष्ट सम्पुष्ट ज्ञान यदि वेदका मूल नही है तो क्या मूल निमित्त है ? अज्ञान निमित्तसे हुए शब्द संदर्भकी प्रमाणता कैसे बनेगी। यदि कहो कुछ भी निमित्त नही है तो वेदका उपादान ही बतला दो कागज आदि जड़ पदार्थ उपादान हैं या कोई ज्ञानमय पदार्थ सर्व ओरसे विचार करनेपर यह सिद्ध होगा कि प्रभुवचनादिनिमित्तक अर्थज्ञान आगम है और वह प्रमाणभूत है।

अनुपलम्भपूर्वक अस्मर्यमाणकर्तृकत्व हेतुकी भी असिद्धि—शंकाकार कहता है कि यदि अनुपलम्भपूर्वक अस्मर्यमाणकर्तृकपनेको हेतु रूपसे कहा जाय तो पहिले जो असिद्ध अनैकान्तिक दोष दिया था उनका यहाँ अवकाश न रहेगा अर्थात् यदि यह अनुमान बनाया जाय कि वेद अपौरुषेय है क्योंकि अनुपलम्भ पूर्वक अस्मर्यमाणकर्तृक है। पहिले तो अनुपलम्भहेतुसे सिद्ध किया गया अस्मर्यमाणकर्तृक और अस्मर्यमाणकर्तृक भी बना तो उससे वेदकी अपौरुषेयताकी सिद्धि हो जायगी। उत्तर देते हैं कि यह भी युक्त नहीं है क्योंकि कर्ताके अभावको ग्रहण करने वाला कोई अन्य प्रमाण ही नही हो रहा है। यदि कहो कि इस ही अनुमानसे कर्ताके अभावकी सिद्धि कर लेंगे तो इतरेतराश्रय दोष आता है। इस अनुमानसे तो करना चाहते हो आप कर्ताके अनुपलम्भकी सिद्धि तो जब अनुमान सिद्ध बने तब कर्ताके अनुपलम्भकी सिद्धि बने। तो अनुपलम्भपूर्वक अस्मर्यमाणकर्तृक यह हेतु सिद्ध हो। अब यह हेतु सिद्ध हो तो अनुमान बने इस तरह इसमें इतरेतराश्रय दोष है।

अनुष्ठायकोंकी नि:संशय प्रवृत्ति होनेसे अकर्तृत्वकी शंका—अब शंकाकार कहता है कि वेदमें यदि कर्ताका सद्भाव मानते हो तो जिस समय लोग वेदमें लिखी हुई विधिका अनुमान करते हैं जो उसमें क्रिया चारित्र यज्ञ आदिक बताये गए हैं उनका जो अनुष्टान करते हैं वे पुरुष तो प्रामाण्यसे अनिश्चित हैं अर्थात् उनको अनुमानके समयमें अपनी क्रियाकी प्रमाणताकी सिद्धि करनेके लिये किसी कर्ता पुरुष का स्मरण करना चाहिये। जो लौकिक विधियोंको करते हैं वे उन यज्ञादिकको करते जाते हैं और कभी वे कर्ताका स्मरण नही करते। जिस बातमें प्रमाणता निश्चित् न हो उसमें किसी बड़ेका नाम अवश्य लेना होता है। लेकिन वेद विधियोंको करने वाले लोग अपने अदृष्ट फलमें, अपने यज्ञादिक कर्मोंमें ऐसा निसंशय होकर लग जाते हैं जैसे ये वेद ही साक्षात् प्रमाण उनके दर्शनमें हैं। यदि अपौरुषेय न होता, साक्षात् प्रमाणभूत न होता तो वेद विधियोंको करते समय उनको अनेक उपदेष्टाका स्मरण करना होता और उस स्मरणकी प्रमाणताका निर्णय होता। जैसे कि जिसका फल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हम नहीं समझते ऐसे कर्मोंमें जब हम प्रवृत्ति करते हैं तो यह कहने लगते हैं कि पिता आदिकने ऐसा ही बताया है इसलिये ऐसा हम करते हैं। जो काम करते हैं उस काम का अगर हमें फल समझमें नहीं आ रहा तो उसकी प्रमाणता सिद्ध करनेके लिये हम उसके उपदेष्टाका नाम अवश्य लेते हैं। पिता आदिककी प्रमाणताके वशसे स्वयं ऐसे कर्मोंमें जिसका कि फल हमने नहीं देखा, पिता आदिकके उपदेशसे ही प्रवृत्ति करते हैं। तो इसी तरह वैदिक कर्म जब करने लगे कोई तो उन्हें भी कर्ताका स्मरण नहीं करते और निःसंशय उनके विधानमें लग जाते हैं इससे सिद्ध होता है कि वेद अपौरुषेय हैं। उसका कोई कर्ता नहीं है और इस ही प्रकारसे अनुमान बनता है कि वेद अपौरुषेय है, क्योंकि कर्ताके स्मरणयोग्य होनेपर भी कर्ताका स्मरण नहीं हो रहा। यदि कर्ता होता तो अवश्य स्मरण योग्य था पर है ही नहीं। इससे वेदका कोई कर्ता नहीं है।

अनुष्ठायकोंकी निःसंशय प्रवृत्तिका अकर्तृकत्वके साथ अनियम—उक्त आशङ्काका उत्तर देते हैं कि इस तरहसे तो जो दूसरे पुरुषोंके आगम हैं अन्य दर्शनोंके शास्त्र हैं उनमें भी यह हेतु चला जाता है। अनेक ग्रंथ ऐसे हैं कि जिनके कर्ताका स्मरण नहीं है अथवा दूसरे दार्शनिकोंके यहां भी शास्त्रोंमें जो लिखा है उसे ऐसा निःसंशय होकर करने लगते हैं कि ये शास्त्र ही प्रमाण हैं। वे कभी ऐसी नहीं धारणा करते उस समय कि यह अमुक ऋषिने बनाया है इसलिए हम ऐसा कर रहे हैं, किन्तु आगममें बताया है इसलिए हम कर रहे हैं। दूसरी बात यह है कि आपका जो हेतु है अस्मर्यमाणकर्तृकपना और उसमें जो विशेषण दिया है कि कर्ताका स्मरण योग्य होनेपर भी नहीं हो रहा तो इतना लम्बा चौड़ा विशेषण तब सार्थक कहलाये जब विपक्षसे विरुद्ध विशेषण विपक्षसे हटते हुए अपने विशेष्यको लेकर हटा करे। पौरुषेयपनेके साथ कर्ता स्मरण योग्य है इस हेतुका न तो सहानवस्था लक्षण विरोध है अर्थात् जहाँ पौरुषेयपना रहे वहां कर्ताके स्मरणकी योग्यता न रहे ऐसा तो है नहीं, या ये दोनों परस्पर परिहारपूर्वक भी नहीं रहा करते कि जहां कर्ताके स्मरणकी योग्यता रहे, वहाँ पौरुषेयपना न रहे ऐसा विरोध भी नहीं है और अगर विरोध हो गया तो इस हीसे अपौरुषेय साध्यकी सिद्धि हो गयी। फिर अस्मर्यमाणकर्तृक यह विशेषण देकर हेतुको कहना व्यर्थ है। साथ ही यह भी सोचें कि जो यह कहा कि वेद विधियोंके अनुष्ठानके समयमें लोग ऐसा निःसंशय होकर लग जाते हैं कि कर्ताका स्मरण तक भी नहीं करते हैं। इससे सिद्ध है कि वेद स्वयं प्रमाणभूत होनेसे अपौरुषेय है और जो यह बताया कि नहीं वे स्मरण करते हैं तो यह कोई नियम नहीं है कि जितने भी अनुष्ठान करने वाले लोग हैं वे इष्ट अर्थ करनेके समयमें उसके कर्ताका स्मरण करके ही परिणति करें। जैसे कि कोई शब्द सिद्धि कर रहा है, जैसे किसी भी संतने व्याकरण बनाया और उसमें बताए हुए सूत्रोंके अनुसार शब्दसिद्धि कर रहा है तो उस समय कोई भी ग्रन्थकर्ताका स्मरण करे ही करे ऐसा तो नहीं देखा जाता।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जिसको ... द्धकी योजना विदित है वे कर्ताके स्मरणके बिना भी शीघ्र ही भवति गम: ... शब्दोंकी सिद्धि कर लेते हैं और उन्हें इन शब्दोंका ज्ञान हो जाता है। तो इन सब बातोंपर विचार करनेसे यह सिद्ध हुआ कि कर्ताका स्मरण छिन्नमूल नही है आपके प्रत्यक्षसे अनुभव नही हो रहा उसके कर्ताका इस कारण छिन्नमूल है यह बात युक्त नही है।

सर्वसम्बन्धि कर्तृस्मरणकी असिद्धि– यदि कहो कि सभी लोगोंको प्रत्यक्षसे कर्ताका स्मरण नही हो रहा इसलिए छिन्नमूल है। तो उत्तरमें कहते कि इसका तुम्हें कैसे पता? सर्व सम्बन्धी प्रत्यक्षसे कर्ताके स्मरणका अनुभव नहीं है यह तुमने कैसे जाना? जो पुरुष असर्वज्ञ हैं वे कभी यह निश्चय नही कर सकते कि सभी लोग वेदके सम्बन्धमें कर्ताको ग्रहण करने वाला प्रत्यक्ष नहीं रखते। सभीका प्रत्यक्षकर्ताको ग्रहण नही कर रहा ऐसा क्या कोई अल्पज्ञ असर्वज्ञ पुरुष निश्चय कर सकता है? इससे कर्ताका स्मरण छिन्नमूल न बना तो यह जो हेतु दिया था कि अस्मर्यमाणकर्तृक होनेसे वेद अपौरुषेय है यह अनुमान सिद्ध नहीं हो सकता।

वेदके कर्तृस्मरणकी छिन्नमूलताकी असिद्धि – यहाँ प्रकरण मूलमें यह चल रहा था कि वेदकी अपौरुषेयताका साधक कोई प्रमाण नहीं है तो सर्वप्रथम तो प्रत्यक्षकी बात कही गई थी कि प्रत्यक्षसे कर्ताका अपौरुषेयताका भान नहीं होता, क्योंकि प्रत्यक्षकी गति ही नहीं है। अतीत काल, अनादिकालको समझनेमें। अनुमान भी अपौरुषेयताका साधक नहीं है। क्योंकि अनुमानमें तुम हेतु क्या दोगे? या तो यह हेतु दोगे कि कर्ताका अस्मरण है या यह कहोगे कि वेदाध्ययन शब्दके द्वारा वाच्य है या यह कहोगे कि काल होनेसे। जैसे वर्तमान काल काल है उसमें कर्ताका स्मरण नहीं हैं इसी तरह अतीत काल भी काल है। वहां भी कर्ताका स्मरण नहीं हो सकता। इन तीन विकल्पोंमेंसे पहिले विकल्पका तो खण्डन किया कि कर्ताका अस्मरण यह हेतु सिद्ध नही होता। इस हेतुसे सम्बन्धित जो प्रसंग बना उस प्रसंगमें यह बात आयी थी कि शंकाकार कर्ताके स्मरणको छिन्नमूल मानता है अर्थात् उसका अब कारण नहीं रहा। उस स्मरणका तांता कट गया। स्मरणका सवाल अब नहीं रहा। तो छिन्नमूलके सम्बन्धमें पूछा गया था कि छिन्नमूलता कैसे सिद्ध हुई? प्रत्यक्ष प्रमाणसे या अन्य प्रमाणसे। तो प्रत्यक्ष प्रमाणसे तो छिन्नमूलता सिद्ध नहीं होती। यदि कहो कि अन्य प्रमाणोंमें कर्ताके स्मरणका, अनुभवका अभाव है तो यही छिन्नमूलना है तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि अनुमान और आगम अथवा अन्य प्रमाण तो कर्ताके सद्भावका समर्थन करने वाला मौजूद है। इस कारण अस्मर्यमाणकर्तृक बनानेका यह हेतु सही नहीं बन सकता।

अस्मर्यमाणकर्तृक कर्ताके स्वामीके सम्बन्धमें तीन विकल्प– फिर और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बतलावो कि अस्र्यमाणकर्तृकपना क्या वादीकी अपेक्षा है या सबकी अपेक्षा है ? अर्थात् कर्ता स्मरणमें नहीं आ रहा इसका मतलब क्या यह है कि वादीका कर्ता स्मरणमें नही आ रहा यह हेतुका भाव है या प्रतिवादीको कर्ता स्मरणमें नही आ रहा ? जो अपौरुषेय मानता है वेदको वह वादी है इस समय, तो वादीको कर्ता स्मरणमें नही आ रहा यह हेतुका भाव है या प्रतिवादीको कर्ता स्मरणमें नही आ रहा यह उसका भाव है ? या सबको कर्ता स्मरणमें नही आ रहा यह उसका भाव है ? यदि कहो कि वादीका कर्ता स्मरणमें नही आ रहा तो यह अनैकान्तिक दोष हो जायगा, क्योंकि अनेक प्रसंग ऐसे हैं जिनमें कर्ताका स्मरण नही हो रहा अथवा वादीको अगर इष्ट है हेतु तो वादीको ही स्मरणमें नही आ रहा तो इससे प्रतिवादीको तो न मना लिया जायगा। यदि कहो कि प्रतिवादीके स्मरणमें नही आता तो यह बात असिद्ध है। प्रतिवादीको तो कर्ताका स्मरण ही है इससे सबको स्मरणमें नही आ रहा यह भी निराकृत हो गया। क्योंकि सबमें क्या है ? वादी और प्रतिवादीको यह बात मजूर नही है। वह कर्ताका स्मरण करना है इस कारण सबका स्मरणमें नही आ रहा यह बात भी खडित हो गई अथवा समस्त आत्माके ज्ञानके विज्ञानसे रहित कोई पुरुष कैसे वेदमें यह निश्चय करेगा कि इसके सम्बन्धमें सभीको कर्ताका स्मरण नही है।

अस्मर्यमाणकर्तृकत्व हेतुसे अपौरुषेयत्वकी साधना या पौरुषेयत्व साधक अनुमानमें बाधनारूप दो विकल्प और भी बताओ कि इस हेतुसे कि अस्मर्यमाणकर्तृक है वेद, जिसके कर्ताका स्मरण भी नही हो पा रहा है ऐसा हेतुसे वेदको जो अपौरुषेय सिद्ध कर रहे हो तो इस हेतुसे क्या तुम स्वतन्त्रतासे अपौरुषेयपना सिद्ध कर रहे हो या पौरुषेयपनाको सिद्ध करने वाले अनुमानमें बाधा दे रहे हो अर्थात् इस हेतुसे अपौरुषेयकी सिद्धि कर रहे हो या पौरुषेयताका खण्डन कर रहे हो ? यदि कहोगे कि हम इस हेतुका स्वतन्त्रतासे अपौरुषेयताको सिद्ध कर रहे हैं तो स्वतन्त्रतासे अपौरुषेयपनेका यह अस्मर्यमाणकर्तृत्व साधन है या प्रसङ्गसाधन है। स्वातंत्र्य पक्षमें तो इस हेतुसे अपौरुषेयत्वकी सिद्धि नही होती, क्योंकि जिसमें पद है वाक्य है वह पौरुषेय होगा। केवल इसमें यह समझमें न आयगा स्वतन्त्रतासे सिद्ध करनेपर कि क्या अस्मर्यमाणकर्तृक होनेसे वेद अपौरुषेय है या पदवाक्यात्मक होनेसे वेद पौरुषेय है ? संदेह वाले हेतुमें प्रमाणता नही आया करती तो यहां जब पदवाक्य नजर आ रहे हैं तो लोकमें शास्त्रोंमें जो ऐसी रचनायें होती हैं उन रचनाओंका कोई कर्ता जरूर होता है। भला इस प्रकारके वर्णोंकी रचना पद और वाक्यका ऐसा क्रम रचना ये सब संदर्भ क्या किसीके किये बिना हो गए हैं ? पद वाक्य जैसी रचना तो चाहे कही भी मिले शास्त्रमें आगममें काव्यग्रन्थोंमें उन रचनावोंको देखकर प्रत्येक पुरुष यह कल्पना करता है कि कितना अच्छा लिखा है, कितनी अच्छी बात बतायी है। तो उससे रचने वालेका स्मरण सबको हो जाता है। भले ही उसका रचने वाला कौन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है यह बुद्धिमें न आये, कर्ता विशेषका स्मरण न आये लेकिन कर्ता स्मरणका तो उन्हें जरूर स्मरण हो जाता है।

हेतुओंसे अपौरुषेयत्व व पौरुषेयत्वकी सिद्धिमें सन्देह शंकाकार कहता है कि हमने जो हेतु दिया है स्मर्यमाणकर्तृकपना अर्थात् इसका कर्ता स्मरणमें नही आ रहा इस प्रकृत हेतुसे संदेहकी उत्पत्ति नही होती जिससे कि इस हेतुको और इस हेतुसे बने हुए ज्ञानको अप्रमाण करार कर दिया जाय. किन्तु प्रतिहेतुपनेसे विरुद्ध प्रतिकूल हेतुवोंको संदेह उत्पन्न हो जाता है। सो जब यह हमारा हेतु है, इस हेतुके होनेपर प्रतिकूल हेतुका नही बन सकता है, फिर इसमें संशय कैसे हो जायगा ? समाधान करते हैं कि जैसे ही प्रकृत हेतुके सद्भावमें पौरुषेयपना सिद्ध करने वाले हेतुकी अप्रवृत्ति कही जा रही है उसी प्रकार पदवाक्यपनारूप हेतुके सद्भाव होनेपर तुम्हारा जो हेतु है अस्मर्यमाणकर्तृकपना इसकी भी आवृत्ति हो जाय। मतलब यह है कि इस समय दो हेतु सामने रखे गए हैं। अपौरुषेयवादी तो यह कह रहे हैं कि इसका कर्ता स्मरणमें ही नहीं आ रहा है इस लिए अपौरुषेय है तो पौरुषेयपना सिद्ध करने वाले यह कह रहे हैं कि चूंकि इसमें पद और वाक्यकी रचनायें भरी पड़ी हैं इस कारणसे ये पौरुषेय है तो जैसे अपौरुषेयवादी यह कहता है कि जब हमारा हेतु यहां रखा है तो उसके समय दूसरा हेतु आ ही नही सकता तो इसके मुकाबलेमें यह भी तो कहा जा सकता है। जब पद वाक्यपनेका हेतु सामने रखा है तो अस्मर्यमाणकर्तृकपन हेतु की प्रवृत्ति भी ही नही हो सकती। इस कारण तुम्हारा हेतु स्वतंत्र साधन नही बन रहा। अर्थात् यह हेतु अस्मर्यमाणकर्तृकपनारूप हेतु साक्षात् अपौरुषेयत्वको सिद्ध करदे, ऐसा साधन नहीं बन रहा।

प्रसंगसाधनके सम्बन्धमें विचार—अस्मर्यमाणकर्तृकत्व प्रसंग साधन भी नही बन रहा। प्रसंग साधनके मायने क्या है ? अनिष्ट बातको ला देना। तो अपौरुषेयत्व माननेपर फिर वेदके कर्ता पुरुषके स्मरणका प्रसंग होता है यह है अनिष्टका अपादान अर्थात् अनिष्ट बात लग गयी है इसीको कहते हैं आपत्ति प्रदर्शन। कोई बात सिद्ध करते करते ही कोई बात अनिष्ट लग बैठे तो उसे प्रसंग साधन कहते हैं, पर कर्ताका स्मरण करना प्रतिवादीको अनिष्ट नहीं है जैसे अपौरुषेयत्ववादी अपने साधनसे अपने इष्ट अपौरुषेय साध्यको सिद्ध करनेमें लगे हैं और सिद्ध करते करते कहीं यह कह बैठें कि इस तरहसे तो प्रसंग साधन हो जायगा अर्थात् वेद पौरुषेय सिद्ध हो बैठेगा तो यह अनिष्ट कब है दूसरेको ? प्रतिवादी लोग तो पौरुषेय ही मान रहे हैं और पद वाक्यरचनाका हेतु देकर स्पष्टरूपसे सिद्ध कर रहे हैं तो यह प्रसंग साधन नही बनता। जो पद वाक्यत्व हेतु देकर उसके कर्ताके स्मरणको जान रहा है वह कर्ताके स्मरणको अनिष्ट कैसे कह देगा यह बात विचारनेकी है कि जहां वाक्यरचना हो, पद रचना हो शब्द रचना हो वह रचना क्या यों ही आकाशसे आ गयी ? क्या

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहींसे टपक गई ? कोई सोच सकता है इस बारेमें कि किसी विद्वानके बिना ऐसा पद वर्ण वाक्य इसकी योजना हो जाय, कोई भी पद वाक्य यहां इस तरह योजनामें नहीं आ रहे तो यह पद वाक्योंकी रचना ही यह बतला रही है कि इसका करने वाला अवश्य है, तो जो पद वाक्यत्व हेतु देकर उसके कर्ताके स्मरणको विश्वास करारहा है उसे तुम यों कहते कि इस तरहसे तो कर्ताका स्मरण बन बैठेगा। यह अनिष्ट आपदा आ जायगी। यहां अनिष्ट कहनेपर यह तो इष्ट है, स्पष्ट है और युक्तिसिद्ध बात है। जितने भी शब्द संदर्भ हैं उनका कोई कर्ता है। उन शब्द रचनाओंको उन शास्त्रोंको, आगमोंको प्रमाण मनानेके लिये अपौरुषेयत्वपना सिद्ध करना बुद्धिमानी नहीं है, किन्तु यह सिद्ध करना बुद्धिमानी है कि उन रचनाओंका मूल कारण अमुक ज्ञानी पुरुष है। भगवान है, सर्वज्ञ है। इस कारण इसकी मूल धारासे चला आया हुआ यह शास्त्र यह आगम प्रमाणभूत है। शास्त्रको प्रमाणता सर्वज्ञमूलक होनेसे होती है। न कि अपौरुषेय होनेसे होती है। शब्दरचना तो अपौरुषेय होती ही नहीं है इस से तुम्हारे हेतुवोंसे वेद अपौरुषेयत्वकी सिद्धि नहीं होती।

आगमके लक्षणके प्रकरणमें प्रासंगिक चर्चा—यह प्रकरण आगमके लक्षण का चल रहा है। आगम कहते हैं सर्वज्ञदेवके वचनादिकके निमित्तसे हुये अर्थज्ञानको। इस लक्षणके प्रसंगमें वेदको अपौरुषेय मानने वाले दार्शनिक कहते हैं कि आप्त तो कोई होता ही नहीं है। इसलिये आप्त वचनोंका कोई निमित्त नहीं। जो अपौरुषेय वेद है वही आगम है और प्रमाणभूत है। उसके सम्बन्धमें बहुत सी चर्चा चलनेके बाद अपौरुषेयत्वको सिद्ध करनेके लिए हेतु दिया गया है अस्मर्यमाणकर्तृकत्व अर्थात् उसका कर्ता स्मरणमें नहीं आ रहा है इस कारण अपौरुषेय है। तो इस हेतुके सम्बन्ध में यह पूछा गया था कि अस्मर्यमाणकर्तृकत्व हेतु वेदको अपौरुषेय सिद्ध करता है या पौरुषेय सिद्ध करने वाले अनुमानमें बाधा डालता है ? तो प्रथम विकल्पका तो विवरण सहित निराकरण किया कि वह अपौरुषेयको सिद्ध नहीं करता।

पौरुषेयत्वसाधक अनुमानमें बाधाका अभाव—यदि कहो कि अपौरुषेयपनेको साधने वाला जो अनुमान है जैसे कि कहा है कि वेदमें पौरुषेयपना है क्योंकि पद और वाक्य इसमें मौजूद हैं। जो पद वाक्य होते हैं वे किसीके द्वारा रचे हुये होते हैं इस अनुमानमें बाधा आयगी, यदि ऐसा दूसरा विकल्प कहते हो तो यह बतलावो कि इस हेतुके द्वारा, अस्मर्यमाणकर्तृकत्व साधनके द्वारा पौरुषेयत्व साधक अनुमानके स्वरूपमें बाधा आती है या उसके विषयमें बाधा आती है। तुम्हारा हेतु किस को बाध रहा है ? स्वरूपको तो बाधित करता नहीं। क्योंकि वहां अब दो हेतु आ गये—अपौरुषेय सिद्ध करनेके लिये हेतु है अस्मर्यमाणकर्तृकत्व और पौरुषेयत्वको सिद्ध करनेके लिये पदवाक्यत्व अर्थात् पद और वाक्यकी रचना इसमें पायी जा रही है इस कारण आगम पौरुषेय है। तो शंकाकार कह रहा है कि अस्मर्यमाणकर्तृकत्व

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हेतुके द्वारा पौरुषेयत्व सिद्ध करने वाले अनुमानमें बाधा आती है तो हम कहेंगे कि पौरुषेयत्व सिद्ध करने वाले पदवाक्यत्व लक्षण हेतुके द्वारा अपौरुषेयत्वके अनुमानमें बाधा आती है। वे दोनों हेतु तुल्यबल वाले हैं क्योंकि सबका हिसाब ठीक मिल रहा है। एक दूसरेसे विशेषता नहीं है और यदि कहो कि वे दोनों हेतु तुल्यबल वाले नहीं हैं उनमें समान शक्ति नहीं है तो यदि अतुल्यबल वाली बात कहोगे तो फिर अनुमान बाधा बतानेसे क्या प्रयोजन रहा जिस ही दोषसे तुम अतुल्य बलपना सिद्ध करते हो उस ही दोषसे उसके अप्रामाण्यकी सिद्धि हो जायगी, इससे पौरुषेयत्व साधक अनुमानका स्वरूप तो बाधा नहीं जाता। यदि कहो कि अस्मर्यमाणकर्तृकत्व हेतुसे पौरुषेयत्व साधक अनुमानके विषयमें बाधा आती है। उस अनुमानका विषय बाधा भी सिद्ध नहीं होती। जब दोनों हेतु तुल्य बल वाले हैं तो एक हेतु दूसरेके विषयमें बाधक बन रहा तो जब दोनों हेतु परस्पर एक दूसरेके विषयमें बाधक बन रहे तो यह कहना चाहिये कि वेदमें दोनों ही धर्म नहीं है अर्थात् न पौरुषेयता है न अपौरुषेयपना है। एक हेतुने अपौरुषेयत्वको निराकृत किया तो एक ने अपौरुषेयत्वको। तो इसका अर्थ यह हुआ कि वेदमें दोनों ही धर्म नहीं हैं। अथवा यदि कहो कि एक हेतु अपने विषयका साधक बन जायगा तो वह एक कौनसा साधक बनेगा? दूसरा भी साधक बन जायगा। तब इसका अर्थ यह हुआ कि वेदमें दोनों ही धर्म पाये जायेंगे, पौरुषेयत्व भी और अपौरुषेयत्व भी। अतुल्यबलवाली बात यदि कहोगे तो उसका यह उत्तर हुआ कि जिस कारणसे अतुल्यबल है उस कारणसे अप्रमाण सिद्ध हो जायगा। फिर अनुमान बाधाकी बात कहना व्यर्थ है। यहां तक एक हेतुके विषयमें चर्चा चली।

अपौरुषेयत्वसाधक अनुमानके प्रथम हेतु विकल्पकी समीक्षा समाप्ति—अपौरुषेयत्ववादियोंसे पूछा गया था कि अपौरुषेयत्वका साधक प्रत्यक्ष तो है नहीं, तब क्या अनुमान है? तो उस अनुमानकी चर्चा चल रही थी कि अपौरुषेयत्वका साधक यदि अनुमान है तो वह किस हेतुसे अनुमान उत्पन्न हुआ। इन तीन हेतु विकल्पोंरूप में पूछा गया था क्या इस कारण वेद अपौरुषेय हैं कि कर्ताका स्मरण नहीं हो रहा है। दूसरा हेतु विकल्प किया गया था क्या इस कारण अपौरुषेय है कि वह वेदाध्ययन शब्दके द्वारा वाच्य है अर्थात् वेदका अध्ययन है और अध्ययन जितने होते हैं वे परम्परापूर्वक होते हैं। तो वेदके अध्ययनकी परम्परा चली आयी है, बनाये किसने? क्या इस हेतुसे सिद्ध करेंगे अथवा कालत्वहेतुसे सिद्ध करें आजके कालमें कोई वेदकर्ता नहीं हैं तो पहिले भी न था। तो इन तीन विकल्पोंमें प्रथम हेतुविकल्पका निराकरण किया। अब दूसरे विकल्पकी चर्चा चलेगी।

अपौरुषेयत्वसाधक अनुमानके द्वितीयहेतु विकल्पकी समीक्षा—क्या वेद इस कारण अपौरुषेय हैं कि वेदाध्ययन शब्दके द्वारा वाच्य है। जैसे आजकलका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अध्ययन गुरुके अध्ययनपूर्वक है तो पहिले भी लोग अध्ययन करते थे वे भी गुरुके अध्ययनपूर्वक करते थे और इस तरह यह परम्परा चली आयी। इस अनुमा से भी पौरुषेयके साधने वाले अनुमानमें बाधा नहीं आती क्योंकि जो दोष ऊपर दिया गया है वह ही दोष यहाँ लगता है कि जब दो हेतु तुल्यबल वाले हैं, अपौरुषेयको सिद्ध करने वाला हमारा हेतु तुम्हारे शरीरसे बलिष्ठ है और पौरुषेयको सिद्ध करने वाला हमारा हेतु हमारी ओरसे और जनताकी ओरसे भी बलिष्ठ है इस कारणसे वेद ध्ययन शब्द वाच्य होनेसे वेदमें अपौरुषेयत्वपना सिद्ध नहीं होता। और न वेदमें पौरुषेयताको सिद्ध करने वाले अनुमानमें बाधा आती है। अब जरा इस ही हेतुके सम्बन्धमें थोड़ा और विचार करें कि यह तुम्हारा अध्ययन शब्द वाच्यत्व हेतु निर्विशेषण होकर अपौरुषेयत्वको सिद्ध करेगा अर्थात् अध्ययन शब्द द्वारा वाच्य है इतना ही मात्र हेतु देकर तुम अपौरुषेयता सिद्ध करोगे या उसके साथ कुछ और विशेषण लगाकर हेतुको सजाकर जैसे कि कर्ताके अस्मरणसे विशिष्ट अध्ययन है इससे वेद अपौरुषेय है ऐसा साथमें विशेषण लगाकर इस हेतुसे अपौरुषेय सिद्ध करोगे ? इसमें दो विकल्प किये हैं कि निर्विशेषण अध्ययन अपौरुषेयत्वको सिद्ध करोगे ? इसमें दो विकल्प किये हैं कि निर्विशेषण अध्ययन अपौरुषेयत्वको सिद्ध करता है या सविशेषण अध्ययन अपौरुषेयता सिद्ध करेगा ? यदि कहो कि निर्विशेषण ही हेतु अपौरुषेयत्व को सिद्ध कर देगा तो तुम्हारा हेतु अनैकान्तिक रहेगा अर्थात् अध्ययन होनेसे यह हेतु तुम्हारे जो ग्रन्थ पौरुषेय हैं, जिन्हें किन्हीं ऋषिसंतोंने रचा है, उनमें भी पाया जाता हेतु तो वह भी अपौरुषेय बन जायगा। जैसे अनेक ग्रन्थ भारत आदिक पुराण हैं ये भी तो अध्ययनमें आ रहे हैं और इनका भी अध्ययन गुरुओंके अध्ययन पूर्वक हो रहा है तो ये भी अपौरुषेय बन बैठे। तो ये भी अपौरुषेयत्वको सिद्ध नहीं कर सकता।

अध्येताओंकी जातिके विकल्पोंका समीक्षण—और भी सोचिये ! यह बतलावो कि आजकलके लोगोंका जैसे अध्ययनपूर्वक अध्ययन हेतु बनाया जा रहा है, क्या आज जैसे ही लोगोंका समूह पहिलेके लोगोंका अध्ययन अध्ययनपूर्वक बता रहे हो या आजकलके लोगोंसे विलक्षण अन्य प्रकारके लोगोंका अध्ययन अध्ययनपूर्वक बता रहे हो ? जो यह कहा है कि वेदका अध्ययन गुरु परम्परासे अध्ययन पूर्वक चला आ रहा है। तो जैसे आजकल लोगोंका अर्थात् अल्पज्ञोंका अध्ययन अध्ययनपूर्वक चल रहा है क्या इस प्रकारके अल्पज्ञ पहिले समयमें भी थे जिसका कि अध्ययन गुरु परम्परासे अध्ययनपूर्वक चला आ रहा है। या आजके पुरुषोंसे वे विलक्षण पुरुष थे। कुछ समझदार थे, अतीन्द्रिय अर्थके जानने वाले थे उनका अध्ययन अध्ययनपूर्वक चला है यह सिद्ध करते हो ? यदि आजके ही समान अल्पज्ञ पुरुषोंका अध्ययन अध्ययन पूर्वक है, यदि ऐसा कहते हो तो वह हमें मंजूर है क्योंकि मंद बुद्धि वालेका अध्ययन अध्ययनपूर्वक ही होता है, पर इससे यह सिद्ध नहीं हो पाया कि उसका मूलमें प्रणेता कोई न था। यह तो मंद बुद्धि वालोंके अध्ययनकी बात रही। यदि कहो कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आजके पुरुषोंसे विलक्षण प्रत्यक्षदर्शी पुरुषोंका अध्ययन गुरु परम्परासे अध्ययन पूर्वक चला आया है तो यह हेतु तुम्हारा प्रयोजन रहित है। जब वे अतीन्द्रिय अर्थके देखने वाले हैं तो उनके गुरु अध्ययनपूर्वक अध्ययनकी क्या जरूरत है? यदि कहो कि हम जैसे अल्पज्ञ पुरुषोंका ही हम अध्ययन अध्ययनपूर्वक सिद्ध करते हैं और उसमें सिद्ध साधन दोष भी नही आता क्योंकि सारे पुरुष हम जैसे हुआ करते हैं। अतीन्द्रिय अर्थका द्रष्टा कोई पुरुष नही होता और इसी कारण वेदमें जो अतीन्द्रिय अर्थके प्रतिपादक वचन हैं उनको रचनेकी किसीमें सामर्थ्य नही है, इस कारण वे सब पुरुष मूल में भी अनादिसे यहाँके आजकलके पुरुषोंकी तरह ही अल्पज्ञ थे। उत्तर देते हैं कि यह बात युक्त नही है। क्योंकि यह वेद वाक्य अतीन्द्रिय अर्थके प्रतिपादनमें प्रमाणभूत सिद्ध हो जाये, अप्रामाण्यसे रहित सिद्ध हो जाये तब तो तुम्हारा यह कहना ठीक बैठ सकता है लेकिन गुणवान वक्ताके अभावमें अर्थात् उन वेद वाक्योंका मूल वक्ता यदि गुणवान न था तो गुणवान वक्ताके अभावमें दोष तो दूर होगा नही, क्योंकि दोष तो दूर हुआ करते है गुणोंसे और, गुणवान वक्ता तुमने माना नहीं तो जब दोष न टलेगा तब तो यह प्रामाण्य अपवाद सहित हो गया अर्थात् संदिग्ध हो गया। प्रमाणभूत भी कहलो, अप्रमाणभूत भी कह लो. सदोष प्रामाण्य रहा। और, सदोष प्रामाण्य वाले वेद वाक्योंको ऐसे पुरुष भी रचनेमें समर्थ हो सकते हैं जो अतीन्द्रिय पदार्थके देखनेकी शक्तिसे रहित हैं तब फिर तुम्हारा यह कहना कैसे ठीक है कि इस अतीन्द्रिय अर्थका प्रतिपादन करने वाले वेद वाक्योंको रचनेमें समर्थ न होनेसे सभी पुरुष आज कलके पुरुषोंके समान हैं जिस कारणसे सिद्ध साधन नहीं होता, अर्थात् गुणवान वक्ता माने बिना वचनोंमें प्रमाणता नही आ सकती।

अपौरुषेयत्वसे अप्रामाण्यनिवृत्तिकी संभावनापर प्रश्नोत्तर—अब शङ्काकार कहता है कि शब्दमें जो अप्रामाण्यकी निवृत्ति होती है अर्थात् यह शब्द प्रमाणभूत है उस बातकी सिद्धि गुणवान वक्ताके होनेसे ही नही होती किन्तु अपौरुषेयपना होनेसे भी प्रामाण्यकी सिद्धि होती है, अप्रामाण्यकी निवृत्ति होती है अर्थात् किसी रचनाका या तो रचने वाला गुणवान हो तब भी प्रमाणभूत है या रचनाका रचने वाला कोई न हो तो प्रमाणभूत है। गुणवान वक्ता होनेसे प्रमाणभूत है। जैसे अनेक ऐसे शास्त्र जो वेदके बाद रचित हैं किन्तु वेद इसलिए प्रमाणभूत है कि उसका रचयिता कोई नही है। गुणवान भी नही, दोषवान् भी नही। तो जब दोषवान वक्ता नहीं है तो दोष कहांसे आयगा? रचना वाला सदोष हो तब तो वचनोंमें दोष आये। अब जिन वचनोंका कोई रचने वाला ही नही है तो उसमें दोष कहांसे आयगा? दोष निराश्रय नहीं हुआ करते, दोषवानके आश्रय होते हैं। तो इस कारण अपौरुषेय होनेसे भी अप्रामाण्यकी निवृत्ति होती है अर्थात् प्रमाणताकी सिद्धि होती है। उत्तर देते हैं कि यह भी कहना समीचीन नही है। यहां जो प्रेरणा वाक्योंमें अपौरुषेयत्व सिद्ध कर रहे हो तो क्या इसका अपौरुषेयत्व अन्य प्रमाणसे जाना गया है या इस ही हेतुसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अर्थात् अध्ययन शब्द वाच्य होनेसे इस हेतुसे अपौरुषेयपना समझा गया है तब तो यह हेतु देना व्यर्थ है है चूंकि वेदका अध्ययन गुरुअध्ययनपूर्वक चला आया है। यदि कहो कि इस हेतुसे ही वेदाध्ययनवाच्यत्वात् इस हेतुसे प्रेरणा की अपौरुषेयता सिद्ध होती है तो इसमें इतरेतराश्रय दोष आता है। वेदाध्ययन वाच्यत्व होनेसे इस अनुमानसे जब पहिले अपौरुषेयता सिद्ध हो जाय तब तो वेदवाक्योंमें अप्रामाण्यका अभाव सिद्ध हो और जब वेदवाक्योंमें अप्रामाण्यका अभाव सिद्ध हो तो अतीन्द्रिय अर्थ प्रतिपादक प्रेरणाके रचने वालेकी सामर्थ्य न होनेसे सभी पुरुष आजकलके पुरुषोंके समान हुए यह सिद्ध हो। इस तरह इसमें इतरेतराश्रय दोष होता है। यों निर्विशेष हेतु तुम्हारे प्रकृत साध्यको वेदकी अपौरुषेयताको सिद्ध नहीं कर सकता।

सविशेषण वेदाध्ययनत्व हेतुसे भी अपौरुषेयत्वकी असिद्धि—यदि कहो कि सविशेषण अध्ययनसे अपौरुषेयता सिद्ध करेंगे अर्थात् कर्ताका स्मरण जहाँ नहीं हो रहा ऐसा अध्ययन अध्ययनपूर्वक चला आ रहा है इस कारण अपौरुषेय है आगम ऐसा विशेषण हेतुमें लगाकर यदि अपौरुषेयता सिद्ध करते हो तो फिर केवल विशेषण ही साधक बन गया। केवल इतना ही अगर कह दो कि कर्ताका स्मरण नहीं हो रहा इससे अपौरुषेयत्व है, इसका भी यही अर्थ है और कर्ताके स्मरणसे सहित अध्ययन चला आ रहा इसका भी अर्थ वही है, फिर तो विशेषण ही गमक हो गया। विशेष्य का ग्रहण करना अनर्थक हुआ। तब शङ्काकार कहता है कि चलो विशेषण ही साध्य को सिद्ध करदे तो इसमें क्या हानि है। हमको तो सर्वथा अपौरुषेयपना सिद्ध करनेसे प्रयोजन है। तो कहते हैं कि यह भी मंसा बनाना युक्त नहीं है क्योंकि कर्ताका अस्मरण हो रहा है। यह जो विशेषण हेतुमें लगाया है तो यह अस्मरण शब्द क्या अभाव नामक प्रमाण है? स्मरण न होनेको अस्मरण कहते हैं। तो स्मरणका अभाव है ऐसा क्या यह अभाव नामक प्रमाण है? या अर्थापत्तिरूप प्रमाण है? अथवा अनुमान प्रमाण है? उनमेंसे पहिला पक्ष तो युक्त नहीं है कि अभाव नामका प्रमाण है क्योंकि अभाव प्रमाणमें प्रमाणता ही नहीं है क्योंकि उसका न स्वरूप बनता है, न अभावकी सामग्री सिद्ध होती है, न अभावका कोई विषय बनता है। तो अभाव नामक कोई प्रमाण है ही नहीं।

पौरुषेयत्वसाधक प्रमाणकी निवृत्ति न होनेसे अभाव प्रमाणसे अपौरुषेयत्वकी असिद्धि—और भी देखिये! अभाव प्रमाणके सम्बन्धमें अभाव प्रमाणवादियोंने कहा था कि सत्ताका उपलम्भ करने वाले पांचों प्रमाण जहां न बन सकें वहाँ अभावकी प्रवृत्ति होती है। प्रमाण ६ माने हैं जिनमें ५ प्रमाण तो सत्ताको सिद्ध करते हैं। अभाव प्रमाण असत्वको बताता है। तो अभाव प्रमाणके सम्बन्धमें अभाव प्रमाणवादियोंने कहा है कि सत्वका उपलम्भ करने वाले पांचों प्रमाण जहां न बन सकें वहां अभाव प्रमाणकी प्रवृत्ति होती है, पर यहां तो प्रमाण वेदकी पौरुषेय-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ताको सिद्ध करने वाले मौजूद हैं, फिर अभाव प्रमाणसे अपौरुषेयताको कैसे सिद्ध करोगे ? देखो ना अभी कहा है कि पदवाक्य होनेसे यह रचना पौरुषेय है, इस अनुमानको अप्रमाण नहीं कह सकते, क्योंकि जितने भी पदवाक्य रचनायें मिलेंगी उन सबका कोई रचयिता अवश्य मिलेगा। जहां एक एक वर्ण मिला जुलाकर शब्द बनाये गए शब्दमें प्रत्यय जोड़कर उन्हें पद बनाया गया और अनेक पदोंको व्यवस्थित सही ढंगसे रखकर वाक्य बनाये गए हैं, ऐसी रचना क्या रचयिताके बिना हो सकती है ? तो पदवाक्य रूप रचना होनेसे यह प्रेरणा अर्थात् वेदवाक्य पौरुषेय हैं इस अनुमानमें अप्रमाणता नहीं है क्योंकि इसकी अप्रमाणता किस कारणसे कहोगे ? क्या इस कारणसे कहोगे कि अभाव प्रमाणकी प्रवृत्तिसे बाधा आती है या इस कारण कहोगे कि पदवाक्यत्व हेतुमें साध्यका अविनाभावपन नहीं पाया जा रहा, इन दो विकल्पोंमेंसे किसी विकल्पके कारण हम पदवाक्यत्वहेतु से सिद्ध होने वाले अनुमानको अप्रमाण कहेंगे। यदि कहो कि अभावप्रमाणसे बाधित है इस कारण पौरुषेयत्व साधक अनुमान प्रमाण है तो इसमें चक्रक दोष आ गया। चक्रक दोष इतरेतरा दोषकी तरह है। इतरेतरा दोषमें दो चीजें होती हैं जिनमें बताया जाता है कि यह सिद्ध हो तो यह सिद्ध हो। जैसे बिना तालीके लगने वाला बक्समें ताली डालकर ऊपरसे लगा दिया तो वहां जैसे यह समस्या सामने आती है कि ताला खुले तो ताली निकले और ताली निकले तो ताला खुले ! तो इतरेतराश्रय दोष दोके बीच हुआ करता है और चक्रक दोष तीन या तीनसे अधिकके बीच हुआ करता है। तो अभाव प्रमाणके द्वारा पद वाक्यत्व हेतुसे साधित अनुमानमें बाधा आनेपर चक्रक दोष आता है। जब तक अभाव प्रमाण की प्रवृत्ति नहीं होती है तब तक इस प्रयुक्त अनुमानमें बाधा नहीं आ सकती। पद-वाक्यत्व हेतुसे जो पौरुषेयत्व सिद्ध करनेमें अनुमान किया है इसमें बाधा तब तक नहीं आ सकती जब तक अभाव प्रमाणकी प्रवृत्ति न बन जाय और जब तक अनुमानमें बाधा साबित न हो तब तक सत्ताका उपलम्भ करने वाले प्रमाणकी निवृत्ति नहीं बन सकती है और जब तक सत्ताको सिद्ध करने वाले प्रमाणकी निवृत्ति न बन जाय तब तक प्रमाणपंचक निवृत्ति निबंधनक अर्थात् पाँचों प्रमाण नहीं लग पा रहे इस कारण से होने वाले अभाव नामक प्रमाणकी प्रवृत्ति नहीं बन सकती और जब तक अभाव प्रमाणकी प्रवृत्ति न बने तब तक अनुमानमें बाधा नहीं आ सकती। यह तो बड़ा लंबा चौड़ा चक्रक दोष हो गया, प्रकृत बात सिद्ध हो ही न सकेगी। यदि कहो कि तुम्हारे हेतु साध्यके साथ अविनाभावी नहीं है तो यह कहना अयुक्त है क्योंकि पदवाक्यात्मक रचना पौरुषेयपनेके बिना कहीं नहीं देखी गई, इसलिये पदवाक्यात्मक हेतु अपने साध्य के साथ पौरुषेयत्वके साथ दृढ़ अविनाभाव रखने वाला है। अतः पदवाक्यत्व हेतुसे पौरुषेयत्वपना सिद्ध होता है।

अनुपपद्यमानरूप अनुमानसे भी अपौरुषेयत्वकी असिद्धि — वेदकी अपौरुषेयता न प्रत्यक्षसे सिद्ध हुई न अनुमानसे। यदि कहा जाय कि अन्यथानुपपद्य-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मानसे अपौरुषेयता सिद्ध हो जायगी जैसे कि वेद अपौरुषेय है अन्यथा कर्ताका अस्मरण नहीं बन सकता था। तो यहां अन्यथानुपपत्तिमें बताया कि कर्ता अस्मरण अन्यथानुमान है अतः कर्ताके अभावका निश्चय है। इस प्रकार अन्यथानुपपद्यमानरूप अनुमानसे भी अपौरुषेयत्वगम्य नहीं हो सकता क्योंकि अन्यथानुपपत्ति अनुमानसे अलग नहीं हैं, यह तो हेतुकी ही विशेषता है और इसका पहिले ही निराकरण कर दिया गया है कि यहां कर्ताके अस्मरणके सम्बन्धमें अन्यथानुपद्यमानता असम्भव है कर्ताके अस्मरणके सम्बन्धमें बहुत विस्तारपूर्वक कहा ही गया है इससे अन्यथानुपद्यमानता भी अपौरुषेयताको सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं है।

तत्कालत्व हेतु वाले अनुमानसे भी अपौरुषेयत्वकी सिद्धि—यदि कहा जाय कि कालत्वात् यह हेतु अपौरुषेयत्वको सिद्ध कर देगा अतीत और भविष्यत ये समस्त काल वेदकर्तासे रहित हैं क्योंकि काल होनेसे। जैसे कि इस समयका काल। इस समय कोई कर्ता नहीं है तो पहिले भी न था आगे भी न होगा। उत्तर देते हैं कि यह हेतु भी अयुक्त है, उसमें पूछा जा सकता है कि कालत्वात् इस अनुमानके द्वारा तुम पौरुषेयत्व सिद्ध करने वाले अनुमानके स्वरूपमें बाधा दे रहे हो अथवा उस अनुमानके विषयमें बाधा दे रहे हो और इन दोनों पक्षोंमें जैसे कि पहिले वर्णन कर दिया है उस प्रकारसे दोष आता है। दूसरी बात कालत्वात् यह हेतु हम अन्य आगम में भी लगा देंगे। चूंकि समस्त काव्य शास्त्रोंके, अन्य ग्रथोंके भी कर्ता आज नहीं हैं सो काल होनेसे इस हेतुके द्वारा ज्ञानका कर्ता पहिले भी न था आगे भी नहीं हो सकता। यह सिद्ध कर दिया जायगा। तो कालत्वात यह हेतु तो जहाँ चाहे लगाया जा सकता है क्योंकि कालपना तो एक साधारण चीज है। हरएकके सम्बन्धमें कहा जा सकता है।

कालत्वहेतुके विकल्प और उनका निराकरण - अच्छा कालत्वात् इस सम्बन्धकी अन्य बात भी देखिये। यह बतलावो कि इस समय जैसा काल है वेदके न करनेमें समर्थ पुरुषोंसे युक्त काल है। वेदमें कर्तासे रहित जैसे आजका काल है क्या इस प्रकारका काल अतीतको सिद्ध कर रहे हो अर्थात् आज जैसे पुरुषोंसे युक्त, अलज्ञोंसे युक्त अतीत काल था उसको यह बात सिद्ध कर रहे हो या आजकलके हम जैसे लोगोंसे विलक्षण अन्य प्रकारके पुरुषोंसे युक्त अतीत काल है ऐसा सिद्ध कर रहे हो। कालत्वात् तो हेतु दिया है कि चूंकि आजके कालमें कोई आगमका कर्ता नहीं दिख रहा तो भूममें भी न था कर्ता तो वह भी काल है, यों कालकी बात कहते हो तो वहाँ दो विकल्प उत्पन्न होते हैं। तुम अतीतकालको ऐसा बता रहे हो जैसे कि आज कलके लोगोंसे सहित काल हैं, जो आगम करनेमें असमर्थ है या नहीं कर रहे हैं ऐसे पुरुषोंसे युक्त आजका काल है क्या ऐसे ही प्राणियों वाला काल अतीत बता रहे हो या अन्य प्रकारके पुरुषोंसे युक्त अतीत कहो कि हम जैसे ही पुरुषोंसे युक्त अतीत

http://sahjanandvarnishastra.org/

कालकी बात कह रहे हैं तो कहते है कि यह बात तो सिद्ध साध्यपनेकी होगी अर्थात् ठीक है। ऐसे ही पुरुषोंसे युक्त यदि अतीतकाल था तो नही किया गया पर यह निर्णय तो नही। यदि कहो कि अन्य प्रकारके पुरुषोंसे युक्त काल था। तो अन्य प्रकारके पुरुषोंके मायने क्या ? सर्वज्ञ अतीन्द्रिय अर्थके द्रष्टा होंगे यों तो तुम्हारा हेतु अप्रयोजक हो गया, बात और उल्टी सिद्ध हो गयी कि ये सब अतीन्द्रिय अर्थके द्रष्टा। यदि कहोगे कि हम आज जैसे पुरुषोंसे युक्त ही अतीतकालको कहते हैं और उससे फिर हम वेदके कर्तासे रहित सिद्ध करते हैं इसमें सिद्ध साध्यता भी नहीं आती है क्योंकि अन्य प्रकारका काल हो ही नहीं सकता। जैसे आजका वर्तमान समय है है वैसा ही पहिले था। अन्य प्रकार क्या हो सकता है ? तो उत्तर देते हैं कि यह तो बतलावो कि आजके कालसे विलक्षण अन्य प्रकारका काल नहीं होता है यह तुमने किस प्रमाणसे जाना। आज जैसे अल्पज्ञ मंद बुद्धि पुरुष पाये जाते हैं और उनसे युक्त समय है आजका तो ऐसे ही पुरुषोंसे युक्त समय पहिले था इससे विलक्षण पुरुष न थे यह बात तुमने किस प्रमाणसे जाना ? यदि कहो कि हमने अन्य प्रमाणसे जाना तो वही अन्य प्रमाण बतलावो उससे ही अपौरुषेयत्व सिद्ध कर लिया जाय, फिर कालपनेकी बात कहकर हेतु कहकर क्या फायदा है ? यदि कहो कि हम इस ही कालत्वात् हेतुसे जाने गये कि अतीतकालमें इससे विलक्षण कोई पुरुष न था तो इसमें अन्योन्याश्रय दोष आता है। अन्य प्रकारके कालका अभाव सिद्ध होनेपर इस अनुमान से वेदकर्ता से रहितपना सिद्ध होता है तब अन्य प्रकारके कालका अभाव सिद्ध होगा इस कारण कालत्वात यह हेतु देकर भी इस आगमकी अपौरुषेयता सिद्ध नहीं कर सकते।

आगमको अपौरुषेय सिद्ध करने वालोंका मानस— आगमकी अपौरुषेयता सिद्ध करनेका प्रयोजन शंकाकारका यह है कि वह प्रमाण मान लिया जाय जिस को किसीने बनाया ही नहीं। अनादिसे ही चला आया है। तो वह पूर्ण प्रमाणभूत है लेकिन प्रमाणता तो सर्वज्ञ प्रभुकी मान्यता करके भी आ सकती थी और वास्तविक शास्त्रोंमें प्रमाणता तो सर्वज्ञदेवके मूल कारण माननेपर आती है। इस ओर दृष्टि न देकर और आगमकी प्रमाणता समझनेके लिये अपौरुषेयताकी सिद्धि की जा रही है लेकिन वह युक्त नही बैठता है, यहां तक प्रत्यक्ष और अनुमानसे अपौरुषेयताकी सिद्धि नहीं हो सकी। यदि यह पक्ष लिया जाय कि आगमसे अपौरुषेयत्वकी सिद्धि हो जायगी तो इतरेतराश्रय दोष है कि जब आगमको अपौरुषेयता पहिले सिद्ध हो ले तब तो यह सिद्ध होगा कि इसमें अप्रामाण्यका अभाव है अर्थात् यह आगम प्रमाणभूत है। और, जब अप्रामाण्यके अभावकी सिद्धि होने लगे तब यह सिद्ध हो सकेगा कि यह अपौरुषेयत्वका प्रतिपादन करने वाला कोई वेदवाक्य ही नहीं है। विधि वाक्यसे भिन्न अर्थात् प्रतिषेध वाक्य मीमांसकोंने प्रमाण नहीं माना है। अन्यथा यदि प्रतिषेध वाक्य को भी प्रामाण्य मान लिया जाय तो पौरुषेयत्वके प्रतिपादन करने वाले जो वचन हैं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उनमें पौरुषेयपना सिद्ध हो जायगा। जैसे बहुतसे वाक्य आते हैं जिनमें हिरण्यगर्भादिकका स्मरण किया जाता है। कहते हैं कि सबसे पहिले हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुए तो इसमें आदि सिद्ध हो गई और पौरुषेयता सिद्ध हो जाती है तो आगमसे भी अपौरुषेयता सिद्ध नहीं हुई।

उपमान व अर्थापत्ति प्रमाणसे भी अपौरुषेयत्वकी असिद्धि— अब एक उपमान प्रमाण आता है मीमांसक सिद्धान्तमें। सदृश चीज देखकर किसी दूसरी चीज सदृशका स्मरण हो जाय उसे उपमान प्रमाण कहते हैं। जैसे बनमें रोझ देखकर गायका स्मरण हो जाय तो उसे प्रमाणभूत माना है। तो उपमान प्रमाण तो तब सिद्ध हो जब अपौरुषेयत्व धर्म वाला कोई और उपमाके लिए मिले। उपमान प्रमाण की यही सकल तो होगी कि देखो यह चीज भी अपौरुषेय है उसकी तरह वेद है इस लिये यह भी अपौरुषेय है। ऐसी तरहकी चीज तो बताना होगी। अपौरुषेयत्व धर्म के आधारसे प्रमाण प्रसिद्ध किसी भी पद वाक्य आदिकका होना सम्भव नहीं है इसलिये अर्थापत्तिसे भी अपौरुषेयत्वकी सिद्धि नहीं होती है क्योंकि अपौरुषेयत्वसे भिन्न कुछ और हो जिससे तुम्हारा अनुपपद्यमान अर्थ कुछ मिले ऐसा कुछ भी नहीं अपौरुषेयत्वसे भिन्नरूपसे जो कुछ न हो सके ऐसे अर्थकी तुम अनुपपद्यमानता किससे सिद्ध करोगे? अर्थापत्तिकी यही तो सकल बन सकती है कि वेद अपौरुषेय है अन्यथा यह बात न बन सकती थी तो अन्यथा यह बात न बन सकती थी उस बातको तो बताओ कि किसके लिये कहा जायगा? वह अर्थ क्या है? यदि कहो कि अप्रामाण्यका अभाव है, यही वह अर्थ है जिससे (जिसके अन्यथानुपपद्यमानसे) अपौरुषेयताकी सिद्धि होती है याने अब यह सकल बन जायगी कि आगम अपौरुषेय है अन्यथा अप्रामाण्य का अभाव न हो सकता था। तो क्या वह अर्थ जो अनुपपद्यमान सम्भावित हो वह अप्रामाण्याभाव लक्षण रूप है अथवा क्या अतीन्द्रिय अर्थके प्रतिपादन करनेका स्वभाव रूप है यह वह अर्थ इस दूसरे विकल्पमें सकल इस तरह बन जायगी कि आगम अपौरुषेय है अन्यथा अतीन्द्रिय अर्थके प्रतिपादन करनेका इसमें स्वभाव न हो सकता था। अथवा वह अर्थ परार्थ शब्दोच्चारण है जिसकी सकल यों बनेगी कि वेद अपौरुषेय है अन्यथा दूसरे पुरुषोंके लिए शब्दका उच्चारण न किया जा सकता था। यों तीन विकल्पोंमेंसे किस विकल्प रूप माननेमें अर्थको मानते हो जो अर्थपत्तिके लिये अन्यथानुपपद्यमान अर्थ बने।

अनुपपद्यमानार्थके विकल्पोंमें प्रथम विकल्पका निराकरण—अनुपपद्यमानार्थक प्रथम विकल्प तो युक्त है नहीं अर्थात् अप्रामाण्यका अभाव है वेदमें इस कारण वेद अपौरुषेय है। यह कहना यों युक्त नहीं कि अप्रामाण्यका अभाव तो अन्य आगम में भी पाया जा सकता। यह बात नहीं कह सकते कि अन्य आगममें अप्रामाण्यका अभाव मिथ्या है। अन्य आगम भी यदि अन्य आगमके प्रमाणको मिथ्या कहोगे तो

http://sahjanandvarnishastra.org/

वेदमें भी मिथ्यापन घट जायगा। यदि यह कहो कि अन्य आगममें तो किसी पुरुष को कर्ता माना है और जितने पुरुष होते हैं वे रागादिक दोषोंसे सहित होते हैं तो रागादिक दोषोंसे सहित पुरुषोंके द्वारा जो चीज बनायी गयी है उसमें प्रामाण्य सम्भव है। वह पूरा प्रमाण कैसे हो सकेगा? जो रागादिमान पुरुषोंके द्वारा रचा गया है वह प्रामाण्य कैसे? किन्तु वेदमें यह दोष यों नहीं आ सकता कि किसीने रचा ही है। अप्रामाण्यको उत्पन्न करने वाले दोषोंका आश्रय कोई पुरुष होता है सो कर्ता वेदमें नहीं माना गया। तो इसके उत्तरमें पूछ रहे हैं कि यहाँ कर्ताका अभाव निश्चित है यह कैसे जाना? यदि कहो कि अन्य प्रमाणसे जाना कि वेदका कर्ता नहीं है कोई तो यही बतलावो फिर। अर्थापत्तिकी बात कहना फिर व्यर्थ है। यदि कहो कि अर्थापत्तिसे ही सिद्ध होगा तो इसमें इतरेतराश्रय दोष आता है अर्थापत्तिसे पहिले कर्ताके अभावकी सिद्धि हो और कर्ताके अभावकी सिद्धि हो तो अप्रामाण्यके अभावकी सिद्धि हो। जब यह सिद्ध हो जाय कि इसमें अप्रामान्यका अभाव है यह प्रमाणभूत है तो अर्थापत्तिसे कर्ता पुरुषके अभावकी सिद्धि हो इस कारण अर्थापत्तिकी सिद्धिके लिये अपौरुषेयसे भिन्न जिस अर्थकी अनुपपत्ति बने वह अर्थ अप्रामाण्यका अभाव तो नहीं ठहरा।

अतीन्द्रियार्थप्रतिपादनस्वभाव व परार्थशब्दोच्चारण अर्थापत्तिसे भी अपौरुषेयत्वकी असिद्धि—अब यदि दूसरा विकल्प लोगे कि अतीन्द्रिय पदार्थके प्रतिपादन करनेका स्वभाव वाला है वह अर्थ जिससे हम अर्थापत्ति सिद्ध करेंगे तो यह बात यों अयुक्त है कि अतीन्द्रिय अर्थका प्रतिपादन करनेरूप अर्थ तो अन्य आगमोंमें भी सम्भव है। वेदसे अतिरिक्त अन्य पुराण शास्त्र अन्य दर्शनोंके आगम ये भी परमाणु काल, आत्मा आदि अतीन्द्रियार्थका भली प्रकारसे प्रतिपादन कर रहे हैं। इस कारण से यह सकल बनाना युक्त न रहा कि वेद अपौरुषेय है अन्यथा याने अपौरुषेय न होता तो अतीन्द्रिय अर्थके प्रतिपादन करनेका स्वभाव न पाया जाता। अतीन्द्रियार्थ प्रतिपादनका स्वभाव तो अन्य आगमोंमें भी पाया जा रहा। इससे द्वितीय विकल्प भी युक्त नहीं रहा। अब तृतीय विकल्प मानोगे अर्थात् दूसरेके लिए शब्दका उच्चारण अन्यथा नहीं बन सकता था इस कारण वेद अपौरुषेय है तो यह कहना भी युक्त नहीं है क्योंकि इस शङ्कामें यह मर्म रखा था कि शब्द नित्य हो तभी दूसरेको कुछ समझाया जा सकता है। जैसे कोई चीज नित्य है तब तो दूसरेको खयालमें कराया जा सकता। देखो यह चश्मा है ना, यह इसका है, इस काम आता है, ऐसा है तो वह चीज एक कई दिन रहने वाली है तब तो उसका सकेत कराया जाता, तो इसी तरह शब्द एक है नित्य है तब तो दूसरेको समझाया जा सकता कि इस शब्दका यह अर्थ है। तो दूसरेके लिए शब्दका जो उच्चारण किया जाता है और उससे वह दूसरा अर्थ समझ जाता है तो इससे सिद्ध है कि वह शब्द नित्य है और उस नित्यका जो प्रतिपादन करे वह भी नित्य है। यों अपौरुषेयता इस विकल्पके द्वारा मानी जा रही थी। उत्तरमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहते कि यह भी अयुक्त है क्योंकि पदार्थकी प्रतिपत्ति तो सादृश्यसे भी जानी जा सकती है। जैसे रसोईघरमें धुवां देखकर अग्निका ज्ञान किया था तो क्या यह जरूरी है कि रसोईघर वाला ही धुवां कहीं मिले तो अग्नि जानी जायगी ? अरे ! उस धुवां के सदृश जहां धुवां मिलेगा वहां अग्नि जान ली जायगी। इससे यह सिद्ध होता है कि वही शब्द होना चाहिए तब हम दूसरेको समझा सकते हैं। उस शब्दकी तरह दूसरा शब्द मिले उससे भी समझाया जा सकता है। जैसे धूमकी तरह अन्य धूम मिलनेसे अग्निका ज्ञान हो जाता है। तो शब्द नित्य नहीं है अनित्य है. इस कारणसे दूसरेके लिए शब्दका उच्चारण अन्यथा नहीं बन सकता अतः वेद अपौरुषेय है यह बात नहीं बनती, क्योंकि संकेत और समझाना तो सदृश शब्दोंके द्वारा हुआ करता है।

प्रसज्यप्रतिषेधरूप अपौरुषत्वकी असिद्धि अच्छा अब यह बतलाओ कि जो अपौरुषेयपना सिद्ध कर रहे हो जिसमें दो शब्द हैं -अ पौरुषेय। अ का अर्थ है नहीं, पौरुषेयका अर्थ है कृतक, किया गया। तो इस अपौरुषेय शब्दका अर्थ क्या है ? क्या यह प्रसज्यप्रतिषेधरूप है या पर्युदासरूप है ? प्रसज्यप्रतिषेधका अर्थ यह है कि जिसका अर्थ केवल 'न' कहना है। जैसे एक वाक्य बोला किसीने कि अजैनको भोजन करावो, तो उस अजैनके दो अर्थ हो सकते हैं- जैन न, बस आगे कुछ नहीं। दूसरा पुरुष ग्रहण न करना, किन्तु जैनका अभाव इसे कहते हैं प्रसज्यप्रतिषेध तो उसे क्या भोजन कराया जायगा ? कहीं जैनके अभावको भोजन भी कराया जा सकेगा ? अब दूसरा अर्थ तो यह है कि जो जैन नहीं, अन्य हैं उन्हें भोजन कराओ। तो इसे कहते हैं पर्युदास ! तो यहाँ जो अपौरुषेयत्व सिद्ध की जा रही है वह प्रसज्य प्रतिषेधरूप माना गया है या पर्युदासरूप माना गया है ? यदि कहो कि प्रसज्यप्रतिषेधरूप माना है तो वह प्रसज्यप्रतिषेध अर्थात् अपौरुषेयत्वका अभाव—क्या सत्ताका उपलम्भ करने वाले प्रमाणके द्वारा ग्राह्य है या अभाव प्रमाणके द्वारा ग्राह्य है ? प्रसज्यप्रतिषेधरूप अपौरुषेय अर्थात् पौरुषेय नहीं, इतना ही मात्र केवल अभाव क्या सत्वका उपलम्भ करने वाले प्रमाण द्वारा ग्राह्य है या अभाव प्रमाणके द्वारा परिच्छेद्य है ? उनमेंसे प्रथम पक्ष तो अयुक्त है अर्थात् सत्ताका उपलम्भ करने वाले प्रमाणके द्वारा भी प्रसज्य प्रतिषेधरूप पौरुषेयत्वका अभाव सिद्ध हो जाय यह बात तो विरुद्ध है क्योंकि ग्रहण करना चाहते हो तुम प्रसज्य प्रतिषेधरूप पौरुषेयत्वका अभाव और चाहते हो ग्रहण करना सत्वसिद्ध करने वाले प्रमाणसे तो यह बात कैसे बन सकेगी ? सत्ताको उपलम्भ करने वाले प्रमाणोंके द्वारा तुच्छ स्वभाव वाला अभाव ग्राह्य नहीं बन सकता और फिर तुच्छ स्वभावरूप अभाव तो कुछ चीज ही नहीं कहलाता। इससे प्रसज्य प्रतिषेधरूप पौरुषेयत्वका अभाव सत्ता सिद्ध करने वाले प्रमाणसे न जाना जा सकेगा। यदि कहो कि हम उसे अभाव प्रमाणसे जान लेंगे तो यह तुम्हारी केवल श्रद्धाभरकी बात है। अभाव प्रमाण तो असम्भव है। उस अभाव प्रमाणके द्वारा प्रसज्यप्रतिषेध तुच्छ अभाव स्वभावरूप अभाव ग्रहणमें नहीं आ सकती। अभाव प्रमाण तो यों भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

असम्भव है कि जिसकी न कोई सामग्री है, जिसका न कोई स्वरूप है उसकी सत्ता क्या ? अभाव प्रमाण क्या ? तुच्छाभावरूप अभाव नही होता, न किसीके ज्ञानमें स्वतन्त्रतासे तुच्छाभावरूप अभाव ज्ञानमें आया है। इससे प्रसज्य प्रतिषेधरूप अपौरुषेयत्व मानना तो युक्त नही है अर्थात् पौरुषेयत्वका अभाव सिर्फ अभाव सिद्ध करता है कि उसका कुछ अर्थ ध्वनित नहीं होता कि किसे कहा जा रहा। ऐसा प्रसज्य प्रतिषेधरूप अपौरुषेयत्व सिद्ध नहीं हो सकता।

पर्युदासरूप अपौरुषेयत्वकी भी असिद्धि—वेद अपौरुषेय है। इसमें अपौरुषेय है। इसमें अपौरुषेय शब्दका क्या अर्थ है यह पूछा जा रहा है। अपौरुषेय शब्द के दो अर्थ हैं - एक तो पौरुषेय नहीं। इसके आगे और कुछ न सोचना पौरुषेयत्वका अभावमात्र। इसे कहते हैं प्रसज्यप्रतिषेध दूसरा अर्थ होता है अपौरुषेय। मायने पौरुषेय नहीं और कुछ। इसे कहते हैं पर्युदास रूप। तो पुराना प्रतिषेधरूप अपौरुषेय का तो निराकरण किया था अब पर्युदास पौरुषेयकी चर्चा चल रही है। यदि पर्युदास मानते हो तो यह बतलावो कि दूसरी बात जो पौरुषेयसे अन्य है पर्युदास विधि से अपौरुषेय विधिको कहा जाय तो पर्युदासका यह अर्थ है कि यह नही किन्तु अन्य अन्य सब कुछ लेकिन इस प्रकार अपौरुषेय शब्दका पर्युदास अर्थ है तो वह अर्थ बतलावो जो पौरुषेय नहीं किन्तु अन्य कुछ है। यदि कहो कि वह अर्थ है वेदका सत्त्व। वेद अपौरुषेय है अर्थात् पौरुष नही किन्तु क्या है ? सत्त्वभूत। यदि वह सत्त्व विशेषण सहित याने अपौरुषेयका अर्थ वेदका सत्त्व इतना ही किया है तो वेदका सत्त्व इतना ही मतलब है या वेदका अनादि सत्त्व अनादिसे वेदका सत्त्व है यह सत्त्वका अर्थ यह सत्त्वका अर्थ है ? यदि कहो कि निर्विशेषण सत्त्व माना है तो यह बात हमें भी पसंद है, क्योंकि पौरुषेयसे अन्य क्या है वेदका सत्त्व। वह प्रत्यक्ष प्रमाणसे प्रसिद्ध ही है। वेद शास्त्र ये सब प्रत्यक्षसे देखे ही जाते। जैसे कि अन्य ग्रन्थ। पौरुषेयके मायने है कृतक कियः गया। और उससे भिन्न हुआ उसका अभाव रूप हुआ वेदका सत्त्व। उस पदार्थका सत्त्व। तो इसमें कौन विवाद करता है ? ठीक है, मान लो। यदि कहो कि अनादि सत्त्व अर्थ करेंगे। अपौरुषेय है वेद तो इसका अर्थ है कि वेद अनादिसे सत् है। तो उसके अनादित्वमें बहुत कुछ बाधायें बतायी जा चुकी हैं। अनादित्व सिद्ध नहो होना। इस प्रकार अपौरुषेयका पर्युदास रूप भी अर्थ युक्त नही हो सकता।

अव्याख्यात वेदमें अर्थ प्रतीति करनेकी असंभवता—अच्छा मानलो वेद अपौरुषेय है तो भी यह वेद व्याख्यान किये जाते हुए अपने अर्थको बताता है या बिना ही व्याख्यान किए अपने अर्थको बताता है ? शंकाकारके मतके अनुसार मान लो थोड़ी देरको कि वेद अपौरुषेय है मगर वह व्याख्यात होकर अपने अर्थमें विश्राम कराता है या अव्याख्यात होकर ? याने उसका व्याख्यान किया जाय तब वह वेद

http://www.jainkosh.org

अपने अर्थको बताता है या व्याख्यान न भी किया जाय तो भी वेद अर्थकी प्रतीति कराता रहता है ऐसे दो विकल्प किये गए। यदि बिना व्याख्यान किए ही बिना उस की व्याख्या टीका, अर्थ विवरण किए ही वेद अपने अर्थमें प्रतीति कराने लगे तो इस में तो वेद जैसे द्विजोंको अपना अर्थ बता देते इसी तरह बौद्धादिकको क्यों अपना अर्थ बताते रहते हैं तो सबको बताते रहें। इसलिए अव्याख्यात होकर वेद अपना अर्थ नही बता सकता।

व्याख्यात वेदमें भी अर्थप्रतीति करनेकी अक्षमता—यदि कहो कि व्याख्यात होकर वेद अपना बता देगा, व्याख्यान किये जानेपर यह वेद अपना अर्थ बताता है तो यह बतलावो कि उसका व्याख्यान कैसे होता है ? क्या स्वत: व्याख्यान होजाता है या किसी पुरुषके द्वारा व्याख्यान होता है ? किस तरह व्याख्यान होता है ? यदि कहो कि उसका व्याख्यान स्वत: ही चलता रहता है तो यह बात यों युक्त नही कि वेद तो जड़ है, वह कुछ बोल सकता नही है। शब्द है आकार है तो उसके पदवाक्य का यही अर्थ है, दूसरा अर्थ नही है यह कैसे समझा सकता है वेद ? और यदि समझा दे वेद कि मेरे पदोंका यह अर्थ है, दूसरा अर्थ नही है तब फिर उसके अर्थमें भेद क्यों लोग करते ? जब वेद ही स्वयं अपने आप अपना अर्थ बताने लगा तो लोग उसमें विवाद क्यों करते हैं ? कोई कहता है कि इस वाक्यका यह अर्थ है तो कोई कहता कि यह अर्थ है. यह विवाद क्यों ? जब वेद ही स्वत: व्याख्यान करने लगा, अर्थ बताने लगा तो फिर व्याख्यानोंमें भेद नही आना चाहिये। इससे वेदका स्वत: व्याख्यान तो बन नही सका। यदि कहो कि पुरुषसे व्याख्यान हो जायगा तब फिर पुरुषोंके व्याख्यानसे जो कि पौरुषेय है जो पुरुषके द्वारा किया जाय उसे पौरुषेय कहते हैं, पुरुषसे व्याख्यान चले तो वेदका व्याख्यान पौरुषेय व्याख्यानसे यदि अर्थका ज्ञान माना जाय तो फिर उसमें दोषकी आशंका कैसे न होगी ? क्योंकि पुरुष तो सदोष हैं। वे विपरीत भी अर्थ बताते हुए देखे जाते हैं। जब पुरुषसे वेदका व्याख्यान माना तो पुरुष अनेक विपरीत भी अर्थ कर सकता है। जैसा उनका ज्ञानप्रकाश हुआ अज्ञान हुआ अज्ञान हुआ उसके अनुसार वे भिन्न भिन्न अर्थ तो करेंगे।

संवादसे प्रमाण माननेपर अपौरुषेयत्वकल्पनाकी अनर्थकता—यदि कहो कि नही, व्याख्यान तो पुरुषसे होता है पर सम्वादमें प्रमाणता मान ली जाती है। सम्वादका अर्थ है सच्चाई। जिसमें विवाद उत्पन्न न हो, सही ज्ञानका निर्णय हो, उसमें प्रमाणता मान ली जाती है उत्तर देते हैं कि सम्वादसे प्रमाणता माननेकी बात कहो, उसमें अपौरुषेयपनेकी कल्पना करना व्यर्थ है। सम्वादका अर्थ क्या है ? जो चीज प्रत्यक्षसे ग्रहणमें आ सकती है उसमें तो हमारा यह इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष ही सम्वादक है। हम प्रत्यक्षसे ही कहते हैं कि यह वस्तु इस ही प्रकारकी है। इसमें किसी प्रकारका विवाद नहीं। और जो पदार्थ अनुमेय होते हैं, अनुमान प्रमाणसे ज्ञेय

http://sahjanandvarnishastra.org/

होते हैं उनमें अनुमान ही सम्वादक है। अनुमेयसे उसकी सचाईका निर्णय होता है। जो चीज परोक्ष है, बिल्कुल दूर है उसमें पूर्वापर विरोध नही आया, उससे सम्वाद होता। जैसे शास्त्र हैं आगम, ये प्रत्यक्ष ग्राह्य नही किन्तु इनका जो वाच्य है वह परोक्ष अर्थ है, परमाणुका वर्णन है, भगवानका वर्णन है, वस्तुस्वरूपका वर्णन है, अनेक वर्णन आते हैं ग्रथोंमें तो उनमें पूर्वापर विरोध नही है। पहिले कुछ कहा, आगे कुछ विपरीत कहा, ऐसा विरोध जहाँ न आये उससे जाना जाता है कि इसमें सम्वाद है। सचाईके निर्णयको सम्वाद कहते हैं। तो पुरुषने वेदका व्याख्यान किया और उस व्याख्यानको सम्वादसे प्रमाण मानते हो तो वेदको भी सम्वादी किसी प्रमाणसे प्रामाण्य बतलावो। फिर अपौरुषेयकी कल्पना क्यों की जाती है? और फिर यह तो देखा ही जा रहा है कि वेदके व्याख्यानोंमें सम्वाद नहीं पाया जा रहा। जितने लोग व्याख्याता हैं उन सबका एकमत हो ऐसा नही नजर आता। कोई उस ही वाक्यका भावनारूप अर्थ करता, इस तरह व्याख्यानमें परस्पर विसम्वाद पाया जा रहा, इससे पुरुषसे भी व्याख्यात होकर वेद अपना अर्थ बताता है यह सिद्ध नही होता।

वेदव्याख्याताके विकल्प और उनका निराकरण—अब और भी सुनो! चलो व्याख्यात होकर वेद अर्थको बताये, पर उसका व्याख्यान करने वाला जो भी पुरुष है वह अतीन्द्रिय अर्थका द्रष्टा है या नही अर्थात् परमाणु आदिक जो इन्द्रियगोचर पदार्थ हैं उनका साक्षात्कार करने वाला उनका ज्ञाता वेदका व्याख्याता है या अल्पज्ञ मंदबुद्धि लोग उस वेदके व्याख्याता हैं? यदि कहो कि अतीन्द्रियदर्शी जीव वे वेद व्याख्याता है तब तो फिर अतीन्द्रियार्थदर्शीका प्रतिषेध नही कर सकते। सर्वज्ञका निषेध नही किया जाना चाहिये। इससे तो सर्वज्ञकी सिद्धि है और जब सर्वज्ञ मान लिया तो यह कहो कि धर्मादिकमें तो वेद वाक्य ही प्रमाण है। धर्मादिकका अधिकारी, धर्मादिकका प्रतिपादक कोई सर्वज्ञ नही है किन्तु वेदवाक्य ही है, फिर ऐसा सोचना नही बन सकता। इससे वेदव्याख्याता अतीन्द्रियार्थदर्शी है, सर्वज्ञ है, यह बात तो शङ्काकारके ही विरोधसे बनती नही है। यदि कहो कि व्याख्याता सर्वज्ञसे अतिरिक्त अन्य कुछ है तब फिर ये अन्य कुछ क्या हुए? मंदबुद्धि साधारण पुरुष, तो फिर साधारण पुरुषोंके व्याख्यानसे वेदके अर्थमें यथार्थताका निर्णय कैसे हो सकता है? जो रागी पुरुष, साधारण, मंदबुद्धि लोग व्याख्यान करने वाले हैं तो उनके व्याख्यानमें यथार्थताका निर्णय कैसे हो सकता, क्योंकि अयथार्थ कहनेकी आशङ्कासे उनमें यथार्थता नहीं बन सकती। वे मिथ्या भी बोल सकते हैं क्योंकि रागी पुरुष हैं, मंदबुद्धि वाले हैं। उनमें दो दोष हैं - एक तो ज्ञानका प्रकाश नही है, दूसरे रागादिक भी पाये जाते हैं। इससे उनके व्याख्यानमें विपरीतताकी बराबर आशङ्का रह सकती है, इससे यह भी कहना नही बनता कि कोई अल्पज्ञ पुरुष वेद-व्याख्याता हुआ करता है।

वेदव्याख्याताओंके प्रज्ञातिशय मानकर प्रामाण्यसिद्धि करनेपर चार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विकल्प—यदि ऐसा कहो कि वेदके जो व्याख्याता हुए हैं जो लोग मनु आदिक उनकी प्रज्ञा सातिशय थी, उनकी बुद्धि प्रबल थी, वे प्रतिभा सम्पन्न थे। अतः उनके व्याख्यानसे यथार्थ ही ज्ञान होता है अर्थात् बुद्धिमान मनु आदिक महापुरुषोंके व्याख्यानमें यथार्थताका निर्णय हो जाता है। इसके उत्तरमें यह पूछा जा रहा है कि क्या तुमने यह निर्णय कर लिया है कि उनकी प्रज्ञा सातिशय थी, वे बड़े प्रतिभासम्पन्न थे, उनकी प्रज्ञामें चमत्कार था। यदि ऐसा तुम मान रहे हो तो यह बतलावो कि उन आदिककी प्रज्ञामें अतिशय कैसे आया? उनकी बुद्धिमें जो विशेष निर्मलता आई और बहुत कुछ सारी समझनेकी प्रज्ञा जगी तो कैसे जगी? क्या स्वतः ही वह प्रज्ञाका अतिशय बन गया? या वेदमें अर्थका अभ्यास करनेसे उनकी प्रज्ञामें अतिशय आ या या भाग्योदयसे उनकी प्रज्ञामें अतिशय आया? या ब्रह्मसे उनकी प्रज्ञामें अतिशय आया? ऐसे ये चार विकल्प किए गये हैं। वेदव्याख्याता मनु आदिकके व्याख्यान यथार्थ हैं क्योंकि उनकी प्रज्ञामें बड़ा अतिशय था और अतिशय प्रज्ञावानके वचन यथार्थ होते हैं। ऐसा कहनेपर प्रज्ञामें अतिशयकी निष्पत्ति कैसे हुई? इस सम्बन्धमें चार विकल्प किए गए।

मन्वादिमें स्वतः प्रज्ञातिशय होनेका निराकरण—यदि कहो कि मनु आदिककी प्रज्ञामें अतिशय आया करता है तो ऐसी प्रज्ञावोंके अतिशय सबमें ही आ जाने चाहियें क्योंकि प्रज्ञाके अतिशय स्वतः आने लगे तो स्वतःमें फिर नियंत्रण क्या, कि मनु है आदिककी प्रज्ञामें अतिशय आया और अन्य जनोंकी प्रज्ञामें अतिशय न आया इस कारण स्वतः ही प्रज्ञातिशय हो जाता है यह बात तो युक्त नहीं है, स्वतः होने वाली बातमें नियत्रण नही किया जा सकता। यह बात अमुकमें ही होवे, अन्य किसीमें न होवे। किसीमें हो अन्य किसीमें न हो ऐसे नियंत्रणका कारण ही और कुछ होता है, यह बात स्वतः नहीं बन सकती।

वेदार्थाभ्याससे प्रज्ञातिशय होनेका निराकरण—यदि कहो कि वेदार्थके अभ्याससे उनकी प्रज्ञामें अतिशय आ गया उन्होंने वेदार्थका बड़ा अभ्यास किया। बारबार अभ्यास करनेसे उनकी प्रज्ञा अत्यन्त स्पष्ट हो गयी। बुद्धिमें पूर्ण निर्मलता जग गयी। ऐसा यदि कहते हो तो यह बतलावो कि क्या ज्ञाता वेदार्थका अभ्यास था उनका या अज्ञात वेदार्थका अभ्यास था? मनु आदिकने वेदार्थका अभ्यास किया तो क्या जाने हुए वेदार्थका अभ्यास किया या न जाने हुए वेदार्थका अभ्यास किया? इन दो विकल्पोंमेंसे यह तो कह नहीं सकते कि बिना जाने हुए ही वेदार्थका अभ्यास किया। यदि अज्ञात अर्थका अभ्यास बनने लगे तो वही दोष आयगा कि सबको उस वेदार्थका अभ्यास आ जाना चाहिये। जब बिना जाने हुए अर्थात् अज्ञात वेदार्थका अभ्यास चलने लगा तो जो ढोर चराने वाले हैं उन तकको वेदार्थका अभ्यास बन जाना चाहिए। क्योंकि उनको जाननेका नियन्त्रण ही नहीं कि पहिले जानें फिर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उसका अभ्यास करें अब तो अज्ञातका अभ्यास चलने लगा ना। इससे अज्ञातका वेदार्थ अभ्यास मनु आदिकके नही बन सकता यदि कहो कि अज्ञात अर्थका अभ्यास हुआ। उनके तो यह बतलावो कि उसका ज्ञान कैसे हुआ ? जाने हुए वेदार्थका अभ्यास किया उन्होंने तो उस ही जाननकी बात पूछ रहे हैं कि उसका जानना हुआ कैसे ? स्वत: हुआ या किसी अन्य कारणसे हुआ ? यदि स्वत: कहोगे तो इसमें एक तो यह दोष आता कि फिर स्वत: ज्ञान होता तो सबको क्यों नही हो जाता ? दूसरी आपत्ति यह है कि इसमें अन्योन्याश्रय दोष आ जाते हैं। किसी प्रकारके जब स्वत: वेदार्थका ज्ञान बने तब वेदार्थका अभ्यास बने। यदि कहो कि अन्य प्रमाणोंसे या अन्य पुरुषसे उसका ज्ञान हो जाता है कि मनु आदिकने अभ्यास किया तो फिर जिस पुरुषसे ज्ञान हुआ उस पुरुषका ज्ञान भी अन्यसे होगा इस तरह अनवस्था हो जायगा। तब तुम्हारी बात यह निर्णयमें आयी कि अतीन्द्रिय अर्थका द्रष्टा न मानने पर अर्थ परम्परासे अटपट प्रसंग आनेसे यथार्थ निर्णय नहीं बन सकता है। इससे यह विकल्प करना ठीक नही रहा कि वेदार्थके अभ्याससे धर्मादिककी बुद्धिमें अतिशय जगा और इसी कारण उनके व्याख्यानमें यथार्थता बसी हुई है।

अदृष्टसे प्रज्ञातिशयकी असिद्धि—अब तीसरे विकल्पकी चर्चा चल रही है कि यदि यह कहो कि अदृष्टसे मनु आदिकको बुद्धिमें अतिशय आ गया है तो अदृष्ट तो सब जगह है। सब प्राणियोंमें बसा हुआ है, सभी प्राणियोंमें अतिशय क्यों नहीं आ जाता ? बुद्धिकी निर्मलता जब भाग्यसे आने लगी तो भाग्य सब जीवोंमें लगा है पर सब जीवोंकी बुद्धि निर्मलता नही आ पाती इससे सिद्ध है कि अदृष्टसे प्रति प्रज्ञाका अतिशय सिद्ध नही होता। जो कारणसर्वज्ञ एक समान है फिर उनमें एक जगह तो उसका कार्य मानना न मानना और अन्य जगह कार्य और निमंत्रण बना देना कि यहां ही तो काम होगा अदृष्ट होनेसे मनु आदिककी ही प्रज्ञाका अतिशय होगा, अन्यकी प्रज्ञाका अतिशय न होगा। यह नियंत्रण अविशिष्ट कारणमें नहीं बन सकता। यदि कहो कि प्रज्ञाके अतिशयको साधने वाले अदृष्ट मनु आदिकमें ही सम्भव है, अन्य प्राणियोंमें सम्भव नही है तो पूछा जा रहा है उनसे कि प्रज्ञाके अतिशयको बनाने वाले अदृष्टकी उत्पत्ति मनु आदिक में ही है यह बात कैसे समझी ? यदि कहो कि वेदके अर्थका वे व्याख्यान करते हैं, अनुष्ठान करते हैं, पालन करते हैं इससे सिद्ध होता है तो फिर वही प्रश्न हो जायगा। क्या वह ज्ञात वेदार्थका अनुष्ठान करता है या अज्ञात वेदार्थका अनुष्ठान करता है ? अनुष्ठानका अर्थ है जो कुछ उन वाक्योंमें कहा है थोड़ा उनका पालन करना। उस रूप विकल्प बनाना तो यह अनुष्ठान ज्ञात वेदार्थका किया गया या अज्ञात वेदार्थका किया गया या अज्ञात वेदार्थका किया गया ? यदि कहो कि अज्ञात वेदार्थका किया गया तो इसमें वह ही दोष आयगा। तब फिर सभी ढोर चराने वालोंको, अन्य सभी देहातियोंको, मूर्खोंको भी वेदार्थका अनुमान हो जाना चाहिये

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्योंकि अब प्रमाण वेदार्थका अनुष्ठान माना जाने लगा। यदि कहो कि ज्ञात अर्थका ही अनुष्ठान होता है तो इसमें इतरेतराश्रय दोष है। जब वेदार्थके ज्ञानका अतिशय सिद्ध हो तब वेद र्थके अनुष्ठान विशेषकी सिद्धि हो और जब वेदार्थानुष्ठानाविशेषकी सिद्धि हो तो उनके ज्ञानातिशयकी सिद्धि हो इस कारण अदृष्टसे मनु आदिककी प्रज्ञामें अतिशय माननेकी बात युक्त नही बैठती है।

ब्रह्मसे प्रज्ञातिशयकी असिद्धि — अब यदि चौथा विकल्प मानोगे कि ब्रह्म से मनु आदिककी प्रज्ञामें अतिशय बन गया। यह पूछा गया था, यह कहनेपर कि मनु आदिककी प्रज्ञा निर्मल है अतः उनके व्याख्यानमें यथार्थता भरी होती है, तो प्रज्ञा अतिशयके सम्बन्धमें चार विकल्प किए गए थे जिनमें स्वतः प्रज्ञा अतिशयकी बात न बनी। वेदार्थके अभ्यासके उनकी प्रज्ञामें अतिशय होना यह भी न बना, अदृष्टसे उनकी प्रज्ञामें अतिशय जगे यह भी न बना और अब विकल्प बताया जा रहा है कि ब्रह्मसे उनकी प्रज्ञामें अतिशय हुआ, यह बात तो तब बने जब ब्रह्मके भी वेदार्थका पहिले ज्ञान सिद्ध करलें। यदि ब्रह्म भी वेदार्थका ज्ञाता नही है तो उससे फिर मनु आदिकके अर्थ परिज्ञानमें अतिशय कैसे आयगा ? तो पहिले ब्रह्मके वेदार्थका ज्ञान सिद्ध कीजिए। ब्रह्मके वेदार्थका ज्ञान कैसे सिद्ध हुआ ? यदि कहो कि धर्म विशेषसे सिद्ध हुआ तो वही इतरेतराश्रय दोष आता है क्योंकि वेदार्थका परिज्ञान न होनेपर वेदार्थ परिज्ञान पूर्वक हुआ करता था अनुष्टान उससे उत्पन्न था धर्म, तो अब वह बनेगा कैसे ? और जब धर्म विशेष न बना तो वेदार्थका परिज्ञान भी नही बन सकता ब्रह्मके। तो यह भी विकल्प न बना कि ब्रह्मसे मनु आदिककी प्रज्ञामें अतिशय जगा। निष्कर्ष यह निकला कि अतीन्द्रिय अर्थका द्रष्टा सर्वज्ञ पुरुष माने बिना वेदके अर्थका परिज्ञान घटित नही हो सकता है। इससे अपौरुषेय माननेपर इस वेदके अर्थमें प्रतीति करनेका कोई नियम न बन सका। अतः वेदकी अपौरुषेयता कहना अयुक्त है।

अभ्याससे लौकिक शब्दोंकी तरह वैदिक शब्दोंकी अर्थप्रतिपत्तिकी आशङ्का प्रसङ्ग यह चल रहा था कि अर्थकी प्रतीति किस तरह होसकती है ? न किसीके किये जानेपर उससे अपने अर्थकी प्रतीति होती है सही और न बिना व्याख्या न किए अपने अर्थमें वेद प्रतीति कर सकता है। इसपर शङ्काकार कहता है कि यह कौनसी बड़ी समस्या है। जैसे व्याकरण आदिकके अभ्यास करनेसे लौकिक पदवाक्य और अर्थका ज्ञान हो जाता है इसी तरह वेदोंमें भी तो पद वाक्य अर्थ है, उनके अभ्याससे उनके अर्थकी भी प्रतिपत्ति हो जायगी। जैसे जिन वाक्योंको हमने आजतक नहीं सुना, जिस निबंधको हमने आज तक नहीं सुना, मगर सुनते ही हमें उसके पद वाक्यका ज्ञान हो जाता है क्योंकि हमने लौकिक पद वाक्यार्थका अवगम कर रखा है। यह तो एक साधारण व्यवहारकी बात है कि जैसे लौकिक ग्रन्थोंको पढ़ते हैं और उनका अर्थ समझमें आता है तो वे ही शब्द पद वाक्य तो वेदमें पाये जाते हैं, उनसे अर्थ समझा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाय तो इसमें कौनसी कठिनाईकी बात है ? इस कारण वेदके अर्थका ज्ञान करनेके लिये अतीन्द्रिय अर्थका द्रष्टा सर्वज्ञ मानना यह बात युक्त नहीं है। सर्वज्ञसे कुछ भी प्रयोजन नहीं है। यह तो शब्द रचना है। पद वाक्य है । जैसे लौकिक पद वाक्य सुनते ही हम उसका अर्थ समझ जाते हैं इसी प्रकार वैदिक पद वाक्योंको सुनकर भी हम उसका अर्थ समझ जायेंगे।

अभ्याससे लौकिक शब्दोंकी तरह वैदिक शब्दोंकी अर्थप्रतिपत्ति माननेपर पौरुषेयताका समर्थन —अब उक्त शंकाका समाधान करते हैं कि यह कहना असार है क्योंकि तब तो फिर जैसे लौकिक पद वाक्य हैं वैसे ही वैदिक पद वाक्य मान लो। तो लौकिक पद वाक्योंके भी तो अनेक अर्थ होते हैं । तो वैदिक शब्दके भी अनेक अर्थ हो गए। अब उन अनेक अर्थोंमेंसे अन्य अर्थोंका परिहार करके जिस अर्थको हम कहना चाहते हैं उस ही अर्थका हम नियम बनायें तो यह कैसे हो सकता है ? जब शब्दोंके अर्थ अनेक हैं तब उनमेंसे हम यही अर्थ लें अन्य अर्थ न लें ऐसा नियम कैसे किया जा सकता है ? यदि कहो कि प्रकरण आदिकसे नियम बन जायगा लौकिक शब्दका भी तो प्रकरणसे नियम बनता है जैसे कोई भोजन करने बैठा है और कहे सैन्धव लावो तो सैन्धवका अर्थ घोड़ा भी है और नमक भी है। तो कोई वहाँ घोड़ा लाकर खड़ा कर देता है क्या ? नमक ही लाता है। तो जैसे प्रकरण आदिकसे लौकिक प्रसंगोंमें नियम बनता है इसी तरह प्रकरण आदिकसे उसका भी नियम बन जायगा। कहते हैं कि यह भी बात नहीं बन सकती है क्योंकि प्रकरण आदिककी भी तो अनेक प्रकारसे प्रवृत्ति की जाती है । जैसे कि संधान आदिक काव्य हैं जिनके दो दो प्रकरणके अर्थ लगते जाते हैं। जैसे सुना है कि एक धनंजय कविका रचित द्विसंधान काव्य है एक ही श्लोकमें रामायण और महाभारत दोनोंके अर्थ लगते जाते हैं तो प्रकरण भी तो अनेक बन जाते हैं । यदि लौकिक गुणादिक शब्दोंसे समान होनेके कारण वैदिक आदिक गुण शब्दोंकी रचनासे ज्ञान कर लिया जाता है तो लौकिक शब्दोंमें जैसे पौरुषेयता भरी हुई है इसी तरह वैदिक शब्दोंमें भी पौरुषेयता क्यों नहीं बन जाती ? जब लोकमें जो शब्द बोले जाते हैं उन शब्दोंका जैसा अर्थ है वही अर्थ वैदिक शब्दोंका बनता है तो लौकिक शब्दोंमें पौरुषेयत्वपना है। तो वैदिक शब्दोंमें भी पौरुषेयत्व क्यों न आ जायगा ? लौकिक जो शब्द हैं अग्नि जल और पद वाक्य, मैं मंदिर जाता हूँ आदिक तो इन शब्दोंकी रचना है कि नहीं ? ये शब्द अर्थवान हैं तो शब्दोंकी यह अर्थवत्ता पौरुषेयपनेसे व्याप्त है। ये शब्द अर्थवान हैं और पुरुषोंके द्वारा उच्चारण किए गए हैं । देखिये इन लौकिक पदोंमें ये दोनों बातें हैं कि नहीं । अर्थत्व और पौरुषेयत्व। शब्द अपना अर्थ रखते हैं और ये पुरुषके द्वारा उच्चारित हैं। तो लौकिक शब्दोंमें जैसे दो धर्म व्यापक हैं अर्थवानपना और पौरुषेयपना तो इसी प्रकार ये वैदिक अग्नि आदिक शब्द भी दोनों धर्मोंसे व्याप्त होना चाहिये। ये वैदिक शब्द भी अर्थवान हुए और पौरुषेय हुए, उनमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

से पौरुषेय धर्मको तो ये वेदका छोड़ दें और अर्थवान धर्मको ये ग्रहण करें ऐसा क्यों, या तो दोनों धर्मोंको ग्रहण करे या दोनोंको छोड़ दे। जब लौकिक शब्दोंकी समानता देखकर वैदिक शब्दोंसे अर्थ परिज्ञानकी बात कही जा रही है तो जैसे लौकिक शब्दों में अर्थवत्ता पड़ी है इसी तरह पौरुषेयत्व भी है। तो दोनों ही बातें वैदिक शब्दोंमें आ जायेंगी।

लौकिक और वैदिक शब्दोंमें समानता होनेसे पौरुषेयत्व व अपौरुषेयत्वके विभागकी असिद्धि—देखो ! लौकिक शब्द अग्नि जल पृथ्वी आदिक ये शब्द ही तो हैं। शब्दके स्वरूप हैं ना, और वैदिक शब्द भी पृथ्वी जल, अग्नि, इन्द्र आदिक ये भी शब्द ही हैं तो लौकिक शब्दोंमें और वैदिक शब्दोंमें शब्दस्वरूपकी समानता है कि शब्दस्वरूपमें कुछ फर्क है ? जैसे अग्नि, जल, भू आदिक लौकिक रसङ्ग में आते है। जैसे शब्दोंके आकारस्वरूप इस लोकव्यवहारके शब्दमें हैं वैसे ही शब्दके स्वरूप वैदिक शब्दमें है तो शब्दस्वरूपकी समानता है इन दोनोंमें और संकेतग्रहणको अपेक्षा रखकर अर्थका प्रतिपादन करदे यह भी दोनोंमें समान है। जब शब्दोंका संकेत ग्रहण किया जाता है गौ शब्द कहनेसे इस अर्थका बोध होता है इस प्रकार शब्द ग्रहणकी अपेक्षा रखकर अर्थको बताना यह बात शब्दोंमें है ना ! तो जैसे संकेत ग्रहण की अपेक्षासे अर्थका प्रतिपादन करना, इस शब्दका यह अर्थ है यह प्रकट हो जाना। जैसे लौकिक शब्दोंमें पाया जाता वैसे ही वैदिक शब्दोंमें भी पाया जाता तो यह दूसरी बात भी समान हो गई। अब तीसरी बात देखो शब्द अगर उच्चारित न किया जाय तो पुरुषके सुननेमें नही आता यह बात जैसे लौकिक शब्दोंमें है इसी तरह वैदिक शब्दोंमें भी है। लौकिक शब्द अग्नि जल आदिक यह बोला न जाय तो दूसरा व्यक्ति सुन कैसे लेगा ? बोला जानेपर ही तो सुना जा पाता है। तो देखो ये वैदिक शब्द भी बोले न जायें तो दूसरा पुरुष सुन कैसे पायगा ? वह भी तो बोले जानेपर सुन सकेगा। तो यह तीसरा धर्म कि उच्चारण न किया जाय शब्दका तो वह पुरुषके द्वारा सुननेमें नही आता, यह भी दोनों जगह समान हैं, लौकिक शब्द भी अनुच्चरित सुननेमें नही आते और वैदिक शब्द भी अनुच्चरित सुननेमें नही आते। इतनी तो समानता है। अब विशेषता क्या रही कि जिससे यह कहा जाय कि वैदिक शब्द तो अपौरुषेय होता है और लौकिक शब्द पौरुषेय होता है। जब सब तरहसे उनमें समानता मिल रही है तो यह अन्तर कैसे हो सकेगा ? संकेतको उल्लंघन न करके अर्थका जाहिर हो जाना यह बात भी दोनों जगह समान है।

शब्दोंको पौरुषेय माननेपर ही संकेत व अर्थविगमकी सिद्धि—अब यह भी विचार करिये कि ये शब्द यदि अपौरुषेय हो जाते हैं तो पुरुषकी इच्छाके अनुकूल फिर उनके अर्थका प्रतिपादन नही बन सकता है। देखा जाता है यह वेदमें भी कि पुरुषोंके द्वारा जिस जिस अर्थमें वे शब्द संकेतित हुए हैं उन शब्दोंका जिस अर्थमें संकेत

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बनाया है उन उन अर्थोंका वे शब्द निर्विवाद ढंगसे प्रतिपादन करते हैं। यदि ऐसा न होता तो फिर संकेत भेदकी कल्पना करना अनर्थक है, उन शब्दोंका आकार होना आदिक ये अनर्थक हो जायेंगे इससे शब्द हैं जैसे लौकिक तैसे ही वैदिक। लौकिक शब्द पौरुषेय है तो वह भी पौरुषेय है वेदकी प्रमाणता सिद्ध करनेके लिए अपौरुषेय मानना यह तो बनता नहीं इसके बजाय यह यत्न करना चाहिये कि इन वैदिक अर्थों में निबंधोंमें परस्पर कहीं विरोध नहीं है और जैसा बताया है वैसे ही पदार्थोंका स्वरूप मिलता है, ऐसा सम्वाद बताकर प्रमाणता सिद्ध करनेका यत्न करना चाहिये।

वैदिक शब्दोंमें रचनाकी अविशिष्टता होनेसे पौरुषेयत्वकी सिद्धि— अपौरुषेयतासे न प्रमाणता सिद्ध होती और न अपौरुषेयत्वकी सिद्धि होती। इससे यह निर्णय करिये कि जो जो पद मनुष्यों द्वारा रचित वचन रचनाके समान हैं वे शब्द पौरुषेय होते हैं। जो भी शब्द ऐसे हों कि जिन्हें मनुष्य रचता है बोलता है तो वह शब्द पौरुषेय ही है। जैसे कि जो जो टूटे फूटे जीर्ण शीर्ण कुवां महल आदिक नये कुवां महल आदिककी रचनाके समान हैं तो वे पौरुषेय हैं, कृतक हैं। उनके कर्ताका भी पता नहीं है, कब बने, किसने बनाया इसका भी पता नहीं है, लेकिन उनके देखते ही इनके कर्ताका तो सामान्य रूपसे लोग स्मरण कर लेते हैं। देखो कितना विशाल किला किसी कारीगरने बनाया था। तो किसीके द्वारा यह बनाया हीं गया था इस बातमें कोई संदेह नहीं रखता। तो जैसे पुराने जीर्ण शीर्ण कुवां महल आदिक नये कुवां महल आदिककी रचनाके समान है तो वे पौरुषेय है इसी प्रकार ये वैदिक वचन शब्द भी मनुष्य द्वारा रचित वचनके समान हैं इस कारण ये भी पौरुषेय हैं। इस अनुमानमें जो हेतु दिया है कि मनुष्य द्वारा रचित वचनरचनाके समान होनेसे। यह असिद्ध नहीं है इसका आश्रय भी असिद्ध नहीं है, क्योंकि वैदिकी जितनी वचन रचना है वह सब प्रत्यक्षसे जाहिर हो रही है। कानोंसे सुननेमें आ रही है और वे शब्द उन्हीं शब्दोंके समान हैं जैसे कि लोकव्यवहारमें बोलते हैं। क्या लोकव्यवहार का अग्नि, जल, शब्द और किस्मका है और वेदकीय अग्नि जल शब्द और किस्मका है? जैसे लौकिक शब्द कानोंसे श्रवणमें आते हैं तैसे ही वैदिक शब्द भी कानोंमें श्रवणमें आते है, अन्य किसी इन्द्रियसे समझमें नहीं आते। तो यह सब समानता स्पष्ट है। इस कारणसे आश्रयासिद्ध दोष नहीं लगता और इसका सपक्ष न हो यह भी बात नहीं है। बराबर स्पष्ट विदित हो रहा है कि नये कुवां महल आदिकमें ये पौरुषेय है, किसी पुरुष कारीगरके द्वारा बनाये गए हैं तो पौरुषेयपना सपक्षमें बिल्कुल प्रसिद्ध है। तो इसी प्रकार मनुष्यरचित रचना रचनाकी तरह ये वैदिक शब्द हैं अतएव ये भी पौरुषेय हैं। हेतु स्वरूपासिद्ध भी नहीं है, क्योंकि जैसे वैदिकी वचन रचना है इसी प्रकार लौकिक वचन रचना है। उसमें कोई विलक्षणता ग्रहण करने वाला प्रमाण नहीं है। जैसे ये शब्द हैं लौकिक कानोंसे सुननेमें आने वाले और उच्चारण किये जाने वाले इसी प्रकार वैदिक शब्द भी कानोंसे सुननेमें आते और मुखसे बोलने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में आते। तो जब लौकिक शब्दोंमें और वैदिक शब्दोंमें कोई विशेषता नहीं है तो फिर उनमेंसे एकको पौरुषेय कहना, एक को अपौरुषेय कहना यह नहीं बन सकता, क्योंकि उन दोनों वचनोंमें कोई विशेषता नहीं है।

अप्रामाण्यके अभावरूप विशेषसे गुणवान कारणका अनिराकरण— यदि कहो कि अप्रामाण्यका अभावरूप विशेष है अर्थात् लौकिक शब्द और वैदिक शब्द सब तरहसे समान हैं तो भी यह अन्तर है कि वैदिक शब्दमें अप्रामाण्यका अभाव है, पूर्ण प्रमाणभूत है, लौकिक शब्दमें इसका नियम नहीं है। कोई प्रमाणभूत होते अप्रमाणभूत होते। उत्तर देते हैं कि यह भी बात युक्त नहीं है। प्रमाणभूत होनेपर भी पौरुषेयत्वका निराकरण नहीं होता। यह नहीं कि जो प्रमाणभूत हो वह अपौरु-षेय हो, ऐसा नियम नहीं बनता। जिसमें सम्वाद हो, जिसमें संशय विपर्यय अनध्यव-साय उत्पन्न न हो वह प्रमाण बनता है। चाहे लौकिक शब्द हो अथवा वैदिक, प्रामा-ण्यकी सिद्धि सम्वादसे होती है अपौरुषेयसे नहीं होती। तो प्रमाणता विद्यमान होने पर भी पौरुषेयत्वका खण्डन नहीं कर सकते। जैसा विशेष भेद प्रतिपादित होकर निराकरण करेगा वैसा विशेष भेद इसके है ही नहीं, इसलिये वैदिक शब्द हो या लौकिक शब्द हो दोनोंमें सब तरहसे समानता है। अतः लौकिक शब्दको पौरुषेय कहना और वैदिक शब्दको अपौरुषेय कहना यह विभाग नहीं हो सकता। और, अप्रा-माण्यको अभाव है, यह जो विशेष है तो दोषवान पुरुषोंका यह निराकरण करता है। कोई बात प्रमाणभूत है, उसमें अप्रमाणता नहीं है तो वह क्या सिद्ध करता है कि इस का रचने वाला, इसका कारणभूत जो पुरुष है वह दोषवान नहीं है। तो अप्रमाणका अभाव है ये जो विशेषण है वह अप्रमाण्यके कारणभूत दोषवान पुरुषका निराकरण करता है, किन्तु अप्रामाण्यको हटाने वाले गुणवान पुरुषका निराकरण नहीं करता। तो अप्रामाण्यका अभाव बतानेसे यह सिद्ध होगा कि इसका रचने वाला गुणवान है कोई पुरुष।

आगमकी प्रमाणताका मूल सर्वज्ञ प्रभु— अब यहाँ शंकाकार कहता है कि भाई बात ऐसी है कि दोषवान पुरुषसे जो रचना बनती वह तो प्रमाणभूत होती नहीं इसे तुम मानते हो और गुणवान पुरुष सर्वज्ञ पुरुष कोई दुनियामें होता नहीं इसलिए वेद अपौरुषेय है। कहते हैं कि यह बात अयुक्त है। गुणवान पुरुषका सद्भाव है। जब आत्माका स्वरूप ज्ञान है और उसका काम जानना है, यह स्वरूप जानता रहे तो उस जाननमें सीमा कैसे? जाननका जो आवरण है। रागद्वेष अथवा पौद्गलिक कर्म ये जहां हट जाते हैं वहांपर ज्ञान पूर्ण प्रकट हो ही जाता है और जिसका ज्ञान परिपूर्ण है उसीको सर्वज्ञ कहते हैं। सर्वज्ञताका सद्भाव है और इसका पहिले सर्वज्ञ सिद्धिके प्रकरणमें बहुत विस्तारसे निरूपण किया गया है। यदि सर्वज्ञका अभाव मान लिया जाय तो अप्रामाण्यका अभावरूप विशेषण फिर ठहर नहीं कर सकता। शास्त्रमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आगममें जो प्रमाणताकी बात समझायी जा रही है उसका मूल कारण सर्वज्ञ है। ये सब आगम ये सब शब्द रचनायें सर्वज्ञसे चली हैं अतएव प्रमाणभूत हैं। सर्वज्ञकी साक्षी भी एक बहुत महत्त्वकी चीज है। जो पुरुष सर्वज्ञ हो जाता है रागद्वेषसे पूर्णतया रहित हो जाता है वह पुरुष हम आप लोगोंकी भांति क्रमसे पदवाक्य रचना करके बोलता होगा यह बात समझमें नहीं आती। यदि हम आप जैसे पद वाक्योंको कोई बोलता है तो उसके किसी न किसी प्रकारका राग है, चिंतन है, अज्ञान है, ये सब दोष उसमें सम्भव हो सकते हैं। तो सर्वज्ञ हम आपकी तरह क्रमशः पद वाक्य रचना जोड़ कर निबंध बनाकर व्याख्यान करता हो यह बात समझमें नहीं आती है। उसका निबंध उसका उपदेश तो एक दिव्यध्वनिमें है। दिव्यध्वनि बन रही है, उसमें शब्दोंकी क्रमशः रचना बन रही हो यह बात वीतरागताके प्रतिकूल है। उस सर्वज्ञके शब्दोंकी जैसे महिमा है ऐसे ही उसकी दिव्यध्वनिके सुननेकी भी महिमा है। अब उसकी साक्षीमें जो गुणवान पुरुष और भी बैठे हैं जिन्हें सम्यक्त्व हुआ है जिन्हें अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान हुआ है ऐसे योगिराजोंका ज्ञान भी बहुत बड़ा विशाल ज्ञान है। तो प्रमाणभूत उनका भी ज्ञान है और जिन्हें पूर्ण प्रमाणमय ज्ञानमय सर्वज्ञदेवक साक्षी मिले हैं, उनकी दिव्यध्वनि मिली है तो उस परम्परासे उनके ज्ञानमें सातिशय प्रमाणता आ जाती है इससे शब्द ये प्रमाणभूत हैं ऐसा माननेके लिए शब्दोंका कारणभूत पुरुष गुणवान है यह मानना होगा।

सकल शब्दोंको पौरुषेय सिद्ध करनेमें नररचितवचनरचनाऽविशिष्टतारूप हेतुकी निर्दोषता—यह हेतु कि वैदिक शब्द भी पौरुषेय है, क्योंकि मनुष्य द्वारा रचित वचन रचनाके समान हैं इस हेतुमें न आश्रयसिद्ध दोष रहा, न स्वरूपासिद्ध दोष रहा न विरुद्धता रही और न इसमें अनैकान्तिक दोष है क्योंकि यह हेतु पौरुषेय प्रासाद आदिकमें देखा जा रहा है अपौरुषेय आकाश आदिकमें नहीं देखा जा रहा है। सपक्षमें हेतु मिल रहा, विपक्षमें नहीं मिल रहा अर्थात् रचनाके समान यह यहाँ साधारणरूपसे हेतु है तो कुवां महल आदिकमें रचनाकी समानता नजर आ रही है और आकाश आदिकमें रचनाका प्रसङ्ग ही नहीं है, इस कारण यह हेतु अनैकान्तिक नहीं और विरुद्ध भी नहीं। विरुद्ध तो उसे कहते हैं कि जो हेतु पक्षमें भी रहे और विपक्षमें भी रहे। मगर रचनाकी समानतारूप हेतु विपक्षमें नहीं रह रहा है इसलिए यह हेतु निर्दोष है। जो जो चीजें रचनाके समान पाई जायें वे वे चीजें पौरुषेय होती हैं। तो यह हेतु न असिद्ध रहा न अनेकान्तिक रहा और इसमें कालात्ययापदिष्ट दोष नहीं रहा। इसका अर्थ है कि हेतु प्रत्यक्षवाधित हो आगम वाधित हो या सिद्ध साधन हो। सो ऐसा इस हेतुमें दोष नहीं पाया जाता, क्योंकि जहां अपने साध्यके साथ अविनाभावरूपसे रहकर हेतुपक्षमें मिलकर पाया जाय, अपने साध्यको सिद्ध करदे वहाँ ही उसके विरुद्ध कोई दूसरा धर्म आये सो नहीं, क्योंकि एक धर्मका एक समय एक ही जगह या विधि होती है या निषेध होता है। प्रयोजन यह है कि यह कहना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि मनुष्य रचित वचन रचनाके समान होनेसे वेद शब्द भी पौरुषेय हैं [illegible] अनुमान में किसी भी प्रकारसे बाधा नहीं आती है। अब आगमका यह लक्षण है कि आप्त सर्वज्ञदेवके वचन आदिके कारण उत्पन्न हुए अर्थज्ञानको आगम कहते हैं, इसमें किसी प्रकारका विरोध नहीं आता।

नरचितवचनरचनाऽविशिष्टता हेतुमें प्रकरणसमत्व दोषका भी अभाव—वैदिक शब्द पौरुषेय हैं क्योंकि मनुष्योंके द्वारा रचित वचन रचनाके समान है। इस हेतुमें किसी प्रकारके दोष नहीं आते। और प्रकरणसम उसे कहते हैं कि जिसके मुकाबलेमें उससे विपरीत हेतु देकर विपरीत साध्यको सिद्ध किया जाय। वह विपरीततामें मिलन जुलन रखता हो विधिप्रतिषेधरूपसे तो ऐसा प्रतिहेतु जो विपरीत धर्मको सिद्ध करे और प्रकरणमें चिंता लावे अर्थात् संदेहसे लेकर निर्णय तक बराबरीका चिन्तन और व्याख्यान चले ऐसा प्रकरणसम दोष भी यहां नहीं है और अपने साध्यका अविनाभूत जो हेतु उससे जो सिद्ध किया जा रहा धर्म, उससे विपरीत धर्म यहाँ सम्भव ही नहीं है. अर्थात् विपरीत धर्मका सिद्ध करने वाला कोई दूसरा हेतु यहाँ नहीं लगता। अबाल गोपालको स्पष्ट है कि जो वचन रचना है वह कभी होती है और मिटती है। इस प्रकार वेद और पद वाक्योंमें नित्यपना घटित नहीं होता और न वेदके वर्णोंमें नित्यपना घटित होता। सर्वप्रथम इस प्रकरणमें यह पूछा गया था कि जो अपौरुषेय सिद्ध कर रहे हो तो क्या वेदके पदोंको अपौरुषेय सिद्ध करते हो या वाक्योंको या वर्णोंको ? तो यहां कह रहे अब कि वर्ण तो कृतक ही होते हैं। जितने भी शब्द हैं वे सब उच्चारित होते हैं, किये हुए होते हैं, वे अनित्य हैं। सो वेदके वर्णोंमें भी अनित्य सिद्धि हो जाती है। वह किस प्रकार शब्द अनित्य है ? कृतक होनेसे, घटकी तरह। अब इसमें अन्वय व्याप्ति लगा लीजिये। जो जो कृतक होते हैं वे सब अनित्य होते हैं। जैसे घड़ा। व्यतिरेक व्याप्ति लगा लीजिये—जो अनित्य नहीं होता वह कृतक नहीं होता, जैसे आकाश आदिक।

कारणान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वसे कृतकत्वकी सिद्धि—यहां कृतकपना असिद्ध नहीं है। शब्द कृतक है क्योंकि अपने कारणका अन्वय व्यतिरेकसे सम्बन्ध रखता है। शब्दका कारण है तालू, कंठ, ओठ आदिक। इनके संयोग वियोग प्रयोगसे ही शब्दकी उत्पत्ति होती है। तो तालू आदिक कारणोंका व्यापार होनेपर ही जब शब्दके स्वरूपकी निष्पत्ति होती है और तालू आदिक कारणका व्यापार नहीं होता तो शब्दकी निष्पत्ति नहीं होती है। तो इससे सिद्ध है कि ये शब्द अपने निष्पादक कर्ता के साथ अन्वय व्यतिरेक सम्बन्ध रखते हैं जैसे कि चक्र आदिकका व्यापार होनेपर घट का आत्मलाभ होता है और चक्र आदिकका काम न रहे तो घटकी उत्पत्ति नहीं होती है, तो घट अपने कारण अन्वयव्यतिरेक व्यापारसे सम्बन्ध रख रहा है सो ये शब्द भी अपने कारणभूत तालू आदिकसे अन्वयव्यतिरेक रखते हैं इससे सिद्ध है कि ये कृतक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। जो अपने कारणके होनेपर हो और कारणके न होनेपर न हो वह कृतक कहलाता है। कृतकका अर्थ किया गया। तो जब कृतक सिद्ध हुआ तो वह अनित्य कहलाया। इससे वेदके वर्णोंका शब्दोंका भी अपौरुषेयत्व अकृतकत्व नित्यत्व सिद्ध नहीं किया जा सकता। इससे यह सिद्ध हुआ कि आगम वही प्रमाण है जो आप्तके वचनादिकके कारणसे उत्पन्न हुआ हो। आगमकी प्रमाणताके लिये गुणवान कारण की खोज करना चाहिये न कि अपौरुषेयत्वकी खोज करना चाहिये।

अर्थप्रतिपादकत्व होनेसे शब्दके नित्यत्वकी शङ्का—अब यहां शङ्काकार कहता है कि शब्द तो अनित्य है हा नहीं। चाहे वैदिक शब्द हो चाहे लौकिक शब्द। अन्यथा याने अनित्य हो उससे अर्थका प्रतीति न होगी। शकाकार कह रहा है कि हम रोज रोज शब्दसे जो अर्थकी प्रतीति किया करते हैं, घट कहा तो यह अर्थ आया गाय कहा तो यह अर्थ आया। इस तरह तभी तो हम शब्दसे अर्थकी प्रतीति करते हैं जब कि जब शब्द नित्य हो, सदा रहता हो तब उससे हम अर्थ जान सकेंगे। अर्थ प्रतीति होती है इस कारण यह समझना कि शब्द नित्य है, क्योंकि अन्यथा अपने अर्थका प्रतिपादकत्व नहीं बन सकता था। यदि शब्द नित्य नही होता, अनित्य होता, उत्पन्न होता और मिटता तो उस शब्दसे अपने अर्थका प्रतिपादक नही बन सकता था ऐसा मानना चाहिये। यह शब्द नित्यत्ववादी शंकाकार अपने शब्दका नित्यत्व सिद्ध कर रहा है। जब शब्द नित्य सिद्ध हो जायगा तो आगम वेद अपौरुषेय सिद्ध हो जायगा। उसकी अपौरुषेयताकी सिद्धिके लिए शब्दके नित्यत्वकी सिद्धि की जा रही है और इस प्रसङ्गमे शब्द नित्यत्वका प्रकरण एक विस्तृत और स्वतंत्र प्रकरण बन जाता है। शंकाकार कह रहा है कि देखिये! अपने अर्थसे ग्रहण किया है सम्बन्ध जिसने ऐसा शब्द अपने अर्थका प्रतिपादन करता है अन्यथा 'जिसने संकेत ग्रहण नही किया ऐसे किसी पुरुषको भी शब्दसे अर्थकी प्रतीति हो जानी चाहिये।

शब्दके अर्थसम्बन्धावगमकी प्रमाणत्रय सम्पाद्यताका विचार—अब अपने अर्थमे शब्दका सम्बन्ध ग्रहण होता है यह कैसे जाना सो सुनो! शब्दके अर्थसे सम्बन्धकी अवगति तीन प्रमाणोंमे सम्पादित होती है। शब्दका अर्थके साथ सम्बन्ध है। वह किस प्रकारसे? जैसे कि कोई बूढ़ा पुरुष किसी ऐसे बालकसे कहता है जिस ने पहिलेसे संकेत समझ रखा है कि ऐ बालक इस सफेद गायको डण्डेसे भगा दो। तो उस समय पासमें खड़ा हुआ कोई दूसरा बालक जिसने कि उन संकेतोंको समझ न पाया था कि इन शब्दोंका क्या अर्थ है, तो वह शब्द जो कहा वह कानोंसे सुन लिया यह तो हुआ शब्दका प्रत्यक्षसे बोध और अर्थका हुआ प्रत्यक्षसे बोध इस तरह कि वह गाय सामने दिख रही है। पर अभी उसने यह नही समझा था कि गायके कहनेसे यह चीज कही जाती है। डण्डा कहनेसे यह कहा जाता है। और भगानेका यह मतलब है। ऐसा जिस बालकने पहिलेसे संकेत न समझ रखा था वह उस पहिले

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

से समझे हुए बालककी क्रियावोंको देखकर, उसकी हस्तादिककी चेष्टावोंको देखकर अनुमानसे सब बातें समझ जाता है ओह! यह गाय है, यह डण्डा है। तो देखो अर्थकी प्रतिपत्ति अन्यथा न बन सकती थी इस कारण उस शब्दमें ही वह वाचक शक्तिकी कल्पना करते हैं। जब उस दूसरे बालकने देखा शब्दको सुनकर अर्थको देखकर फिर उस सुनने वालेकी क्रियावोंको निरखकर समझा—ओह! इस शब्दका यह अर्थ है. इसके मायने यह है। सो अब वह बालक समझ गया। तो देखो अब यहाँ अर्थका, शब्दका जो सम्बन्ध जाना गया है वह तीन प्रमाणोंसे जाना गया है। वे तीन प्रमाण यहाँ कौन हुये? प्रत्यक्ष, अनुमान और अर्थापत्ति। प्रत्यक्षसे तो जाना शब्द और अर्थ। जो बाला गया वह शब्द कानोंमें आया तो प्रत्यक्ष कहलाने लगा। इसके आगे ज्ञानका और काम नहीं है कि वह शब्दका अर्थ समझादे या व्यापार करादे उसका काम तो इतना ही है कि वह हो गया। प्रत्यक्ष सुन लिया। गायको प्रत्यक्षसे देखा, आँखोंसे देखा। तो उसका काम इतना ही है जो जो पदार्थ अवस्थित है वह जाननेमें आ गया। इससे आगे आँखका काम नहीं है कि जो यह समझे कि यह है गाय। जो पदार्थ है उस पदार्थका निरखना जानना मात्र आँखका काम हुआ। तो प्रत्यक्षसे शब्द और अर्थकी प्रतिपत्ति हुई। अब फिर हुआ उस पुरुषके बोधकी चेष्टाका अनुमान। ओह! यह हो रहा है। फिर अर्थापत्तिसे जाना कि यह शब्द यह कह रहा है। तो शब्दसे वाचक शक्ति है। यह शब्द उस अर्थको कहनेकी सामर्थ्य रखता है तो यों प्रत्यक्ष, अनुमान और अर्थापत्ति इन तीन प्रमाणोंसे सम्पाद्य हुआ। यह तीन प्रमाणोंसे बने हुए सम्बन्धका अवगम एक ही बार वाक्यके प्रयोगसे सम्भव नहीं होता। बारबार बोलनेसे यह सम्बन्ध दृढ़ निश्चित होता है. एक तो यह बात, दूसरी यह बात कि जो अनित्य हो, अस्थिर हो उसका बारबार उच्चारण नहीं किया जा सकता।

सदोच्चारित होनेसे शब्दके नित्यत्वकी शंकाका समर्थन—शंकाकार कह रहा है जो चीज अनित्य है उत्पन्न हुई और नष्ट हुई उसको आप कहीं बारबार धर उठा सकते हैं क्या? चौकी है महीनों रहनेकी चीज तो उसे धरते उठते हैं। तो शब्द भी नित्य है। सदा रहता है तब उसे रोज रोज बोल लेते हैं। उसका उच्चारण होता है। तो अनित्य चीजका बारबार उच्चारण घटित नहीं होता और फिर उच्चारण करनेपर अर्थका बोध नहीं होता। जैसे गाय शब्दका उच्चारण किया तो गाय अर्थका बोध होता और न उच्चारण करें तो नहीं होता, इससे यह समझा जाता है कि इस अर्थमें इस शब्दको कहनेकी शक्ति है। जब शब्द और अर्थका यह अन्वय व्यतिरेक समझमें आया तो यह कहा जायगा कि शब्दमें इस अर्थको कहनेकी शक्ति है। यदि वाचक शक्तिके ज्ञानका अभाव हो तो बुद्धिमान लोग दूसरोंको समझानेके लिए वाक्यका उच्चारण नहीं कर सकते इससे यह सिद्ध होता है कि शब्द नित्य है क्योंकि दूसरे पुरुषके लिए वाक्यका उच्चारण अन्यथा बन न सकता था।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यदि शब्द नित्य न होता, अनित्य होता तो दूसरे शिष्योंके लिए वाक्यका उच्चारण अन्यथा बन न सकता था। इसी बातको दार्शनिकोंने भी कहा है कि उच्चारण पर र्थ होनेसे शब्द नित्य है तब दूसरेके लिए उच्चारण किया जा सकता है। कोई चीज नित्य हो तब तो दूसरेके लिये भेंट दी जा सकती है हाथमें लेते ही चीज नष्ट हो जाय तो भेंट क्या देगा ? इसी प्रकार शब्द भी नित्य हैं तभी दूसरेके लिये हम उसका उच्चारण कर सकते हैं।

अर्थप्रतिपादकत्व हेतुसे शब्दनित्यत्वकी शङ्काका समाधान – अब इसका समाधान करते हैं। शंकाकारने यह कहा कि शब्द नित्य है अर्थका प्रतिपादक होनेसे यह बात अयुक्त है, क्योंकि अर्थका प्रतिपादक, अर्थका अविबोधक अनित्य भी बन सकता है। जैसे धुवां अनित्य है ना ! जो धुवाँ रसोईघरमें देखा था क्या वही यह धुवाँ है जो कि इस पर्वतपर दिख रहा है ? अरे, यह तो नवीन धुवां उत्पन्न हुआ है। तो इस धूममें उत्पत्ति है, विनाश है, अनित्य है तो भी यह अग्नि अर्थका अवबोध करा देता है, इसी प्रकार शब्द अनित्य है। कल बोले गए थे शब्द वे कलके परिणमन थे, हुए और मिट गए। आज जो बोले जा रहे हैं शब्द वे आजके परिणमन हैं। ये भी होते हैं और मिटते हैं लेकिन सदृशता तो है। जैसा रसोईघरमें धूम था वैसा ही तो धूम यहाँ है। अर्थकी सदृशता होनेसे वह अन्य अर्थका अविबोध करा देता है। तो शब्दकी वह सदृशता अनित्य होनेपर भी यह शब्द जिसका कि सम्बन्ध जाना गया है, सादृश्य होनेसे अर्थका प्रतिपादक बन जाता है। कहीं यह नियम न कर लेना चाहिये कि जो ही पदार्थ संकेतके समयमें देखा गया है उस ही पदार्थसे अन्य पदार्थका ज्ञान होता है यह नियम बन ही नही सकता, क्योंकि रसोईघरमें रहने वाला धुवाँ क्या पर्वत आदिकसे अन्य जगहमें अग्निको सिद्ध कर देता है ? रसोईघरमें जो आग दीखे, जो धुवाँ दीखा वह दुनियाभरकी सारी आगको सिद्ध करदे यह तो नही बनता। जहाँ जहां धुवां दीखेगा वहां वहां ही वो अग्नि सिद्ध करेगा अन्यथा सारी दुनियामें आग लग बैठेगी ! जब एक जगह धुवां देखनेसे अन्यत्र अग्निका गमक होजाय धुवाँ तो सब जगह आग लग बैठेगी ! इस तरह सब पदार्थ सब जगह व्यापक हो जायेंगे। साध्यके साधनमें जो सम्बन्धका निश्चय होता है वह सदृश परिणामकी प्रधानतासे होता है। वही पदार्थ हो तब हम साध्य सिद्ध कर सकें ऐसा नही है। जो रसोईघरमें धुवां था वही पर्वतपर है तब अग्नि सिद्ध हो रही, ऐसा नही है, किन्तु जैसा धुवाँ रसोईघरमें था उसीके सदृश है। इस सदृशतासे साध्यसाधन सम्बन्धका अवधारण होता है क्योंकि जिसकी समान परिणति अनाश्रित नही है, समान परिणतिका आश्रय न किया हो, जो विषम हो, विरुद्ध हो ऐसे सभी पदार्थोंका अपने साध्यके साथ सम्बन्ध ग्रहण नही किया जा सकता, क्योंकि असाधारणरूपके द्वारा उस पदार्थकी परिणतिका प्रतिभास नही होता। मतलब यह है कि यहां अपौरुषेय मानने वाला जो हेतुको अकृतक मानता नित्य मानता वह यह सिद्ध करना चाहता कि शब्द नित्य है और एक है वहीका वही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। उस शब्दका हम बारबार उच्चारण करते हैं और उसमें हेतु यह दे रहे हैं कि यदि शब्द वही न हो तो उससे अर्थका बोध नहीं हो सकता क्योंकि नया शब्द बोला—अब कोई जो संकेत को न जानता, नई चीज है तो कैसे जान जायगा कि घट किस चीज है ? जब घट पहिले से ही चला आ रहा है और उसका सम्बन्ध पहिले जान लिया तो वही घट शब्द जान लेगा कि वही है। सुननेमें शंकाकारकी युक्ति बड़ी अच्छी मालूम हो रही है लेकिन यह परिचय नहीं किया कि सदृश पदार्थसे भी सम्बंध का बोध होता है। जैसे धुवाँ रसोईघरमें था उससे अग्निका ज्ञान किया जा रहा था, अब पर्वतमें धुवां देखा तो यह धुवां वही तो नहीं है पर उसके सदृश है। तो सदृश धुवांने भी तो अग्निका ज्ञान करा दिया। इसी प्रकार शब्द भी अनित्य है। जब बोला तब हुआ और मिट गया। मगर शब्दमें सदृशता तो है। जिस शब्दको सुनकर हम जिस अर्थका सम्बन्ध जानते थे उस ही प्रकारके शब्दको सुनकर उस प्रकारका अर्थ सम्बन्ध जान लेंगे इसमें कोई अयुक्त बात नहीं है।

नियत हेतुसे भी नवीन नवीन शब्दोंकी उत्पत्ति यहाँ एक विचारणीय बात है कि जैसे रिकार्डमे शब्द भरे जाते हैं तो वे शब्द भरे होते हैं और सुई लगानेसे वे शब्द निकलने लगे तो क्या इससे शब्द नित्य सिद्ध न होगा ? उसका उत्तर यह है कि रिकार्डमें वे शब्द नहीं भरे हैं किन्तु ऐसा एक वैज्ञानिक प्रयोग है कि उस कालमें ऐसे पदार्थोंका मसालोंका ढाँचा बना लेते हैं कि जिससे सुई लगाया तो शब्द प्रकट हो जायें एक हारमोनियम ही ले लो। हारमोनियम बजाया तो उसमें शब्द स्वर सुनाई देते हैं तो क्या वहाँ यह शंका ठीक है कि इस हारमोनियममें शब्द भरे हैं। तब तो जहां अंगुली लगाते हैं वहां शब्द निकल बैठते। और देखें जिस स्वर पर अंगुली लगायेंगे उसपर वही स्वर निकलेगा लेकिन क्या उसमें वे शब्द भरे हैं ? खूब देखलो, लकड़ी है। पीतल है रबड़ है। ये सब तो हैं पर वहां शब्द नहीं हैं। ऐसे पदार्थोंका सम्बन्ध बन या है जिसमें इस प्रकारका प्रयोग हुआ। इस प्रकारकी हवाका धक्का लगे और जिस जगह हवा निकलनेका अवकाश दे वहीं उसपर स्वतः प्रकट होता है, इसी तरह सभीकी बात है। जैसे सितार बाजा है, उसके बारेमें क्या शब्द भरे हैं ? शब्द नहीं भरे हैं किन्तु वह एक ऐसा प्रयोग है, ऐसा ढाँचा है कि जिसपर इस प्रकारका प्रयोग किया जाय तो वहाँ शब्द उत्पन्न होने लगते हैं तो इसी प्रकार रिकार्डका भी मामला है। वहां ऐसा मसालेका पिण्ड बनाया गया, वैज्ञानिकों ने अपनी विज्ञान कलामे ऐसी खोज निर्माण किया कि वहां इस परिस्थितिमें सुईका प्रयोग हो और वह चलें तो वहां भी इस प्रकारके शब्द निकलेंगे। जैसी बात रिकार्ड में है वैसी ही बात टेपमें भी है। सबमें यही बात बसती है। शब्द वहाँ भरे हुए नहीं होते, किन्तु वह पदार्थ ऐसी योग्यताका है कि उसका प्रयोग हो तो शब्द निकलने लगते हैं। उस रिकार्डमें पहिले कहे हुए शब्दोंके सम्बन्धको पाकर उस मसालेमें यह योग्यता आयी कि वह प्रयोग पानेपर इस प्रकारके शब्दोंको निकाले। जैसे कंठ,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ओंठ तालू आदिक पुद्गलके स्थान है, क्या इनमें शब्द भरे हैं। वे तो अन्य पदार्थ हैं शब्द भी एक पदार्थ है स्कंध है। जब इसका उस विधिसे प्रयोग होता है कंठ ओंठ, तालू आदिकका जिस तरह संयोग वियोग किया जाना चाहिये उस तरहसे जब इसका प्रयोग करना है तो इसमेंसे शब्दकी उत्पत्ति होती है, पर जिसने संकेत समझ रखा है शब्दका कि इस शब्दका यह अर्थ है तो जब उस उस प्रकारके शब्द सुनते हैं तो उस उस प्रकारके अर्थका जान लेते हैं। तो शब्दसे अर्थका अवगम होता है इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वह नित्य है। अनित्य पदार्थोंसे भी साध्यका बोध हुआ करता है। तो शब्द नित्य नहीं सिद्ध हुए जिसके कारण तुम आगमको नित्य मानकर प्रमाण बतलानेकी चेष्टा करो। आगम नित्य है यह बात नहीं किन्तु उसका मूल प्रवक्ता सर्वज्ञ प्रभु हैं इस कारण वह प्रमाण है। आगमकी प्रमाणताका यह साधन है।

सदृश साधनसे साध्यप्रतिपत्तिकी तरह सदृश शब्दसे अर्थप्रतिपत्ति—यह कहनेपर कि जैसे सदृश धूमसे अग्निका ज्ञान हो जाता है इसी प्रकार सदृश शब्दसे अर्थका ज्ञान हो जाता है शंकाकार कहता है कि धूम विशेष अग्निकी प्रतिपत्तिका कारण नहीं है किन्तु धूम सामान्य ही अग्निके परिज्ञानका कारण है। उत्तर देते हैं कि यह बात ठीक नहीं है क्योंकि सामान्य ही क्या चीज कहलाती है? अनेक व्यक्तियोंकी सदृशताका ही नाम सामान्य है। और जहां अनेक व्यक्ति हैं वहां व्यक्तियोंसे साध्यकी सिद्धि होती है। कोई भी मनुष्य ऐसा कभी ज्ञान नहीं करता कि धूमत्व होनेसे अग्निका ज्ञान किया, किन्तु ऐसा ज्ञान करता है कि धूम होनेसे अग्निका ज्ञान किया। धूम तो कहलाया व्यक्ति और धूमत्व कहलाया सामान्य तो किसी पुरुषने ऐसा अनुमान नहीं किया कि इस पर्वतमें अग्नि है क्योंकि धूमपना होनेसे। धूम होनेकी बात कोई नहीं कहता, धूमकी बात कहता है। तो जैसे धूमत्वके हेतुसे अग्निका ज्ञान नहीं होता किन्तु धूमसे होता है और वह ज्ञान सामान्य विशेष दोनों व्यक्तियोंका अर्थात् साध्य और साधनका ग्रहण करनेपर घटित होता है परन्तु धूम सामान्य और अग्नि सामान्यसे अनुमेय और अनुमापक बनें ऐसा किसीने नहीं समझा है और इसमें सामान्य विशिष्ट विशेषरूपताके ढंगसे इसका उपयोग करता हो कोई सो भी नहीं अन्यथा याने सामान्यको ही साधन मान लिया जाय तो सामान्यमात्र ही साध्य बन जायगा। यहां सामान्यसे अर्थ जातिको लेना है, भावको लेना है। तो यदि सामान्य मात्र ही साध्य साधन रहे, व्यतिरेक न रहे तो उससे चलाना आदिक अर्थक्रिया बन ही नहीं सकती। रही ज्ञान अर्थ क्रियाकी बात सो ज्ञानरूप अर्थक्रिया तो उसी समय हो जाती है जिस समय ज्ञान किया। फिर तो जो रसोई आदिक बनाना चाहते, कोई चीज चलाना चाहते उन पुरुषोंको अनुमेय अर्थका प्रतिभास तो हो गया और वह क्या? एक सामान्य जाति। जिससे कि दाहादिक अर्थक्रिया नहीं होती है और इसी कारण प्रवृत्ति न हो सकेगी और जिनकी प्रवृत्ति न हो सके उनका अप्रामाण्य हुआ करता है। प्रमाणका लक्षण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो यह है कि जो हितकी प्राप्ति करानेमें और अहितका परिहारकरानेमें समर्थ हो। अब सामान्यको जाना और ज्ञानमात्र ही अर्थक्रिया बनी तब उससे प्रवृत्ति क्या हो सकती है। दूसरी बात --जिस अनुमानके प्रमाणमें तुम धूम और अग्निको सामान्य मान रहे, सामान्यके ज्ञानसे ही विशेषका ज्ञान होना मान रहे और मुख्यता सामान्यको दे रहे हो तो यहां वाच्य वाचकके कथनमें भी शब्द वाचक है और अर्थ वाच्य है इस का भी अर्थ जातिरूप लगा लो, व्यक्तिरूप न लगाना चाहिये क्योंकि दोनों जगह न्याय समान है। जो बात अनुमानके प्रसङ्गमें लगाते हो वही बात यहां वाच्य वाचकके सम्बन्धमें भी लगाइये !

शब्दसादृश्यकी असिद्धिका अभाव—शंकाकार कहता है कि सदृशत्व धर्म से यदि अर्थकी प्रतीति होना माना जाय तो वह इसलिये सम्भव नहीं है कि जो एक चीज है उसमें सदृशता कहांसे आयगी ? शब्द एक ही है, उसकी सदृशता नहीं हो सकती। उसके सदृश कोई दूसरा सिद्ध हो और वाचक हो सो नहीं बन सकता। यदि कहो कि भाग्यके सम्बन्धसे उन सब सदृशोंमें समानता आती है तो यह बतलावो कि जिस शब्दका अर्थ जाना था अर्थवान शब्द तो पहिले देखा था और जाना था। वह तो उसी क्षणमें नष्ट हो गया। अब दूसरी बार जो कोई भी उत्पन्न हो रहा है शब्द इसका यह अर्थ है याने यह। यों अर्थ वाला है यह कैसे जाना जा सके ? उत्तर कहते हैं कि इस तरहसे तो अनुमानका भी उच्छेद हो जायगा क्योंकि अनुमानमें भी यह लगावोगे कि जो धुवाँ पहिले जाना था वह तो वहीं नष्ट हो गया। वर्तमान घटनामें जो धूम स्थान जाना जा रहा है वह एक नया है तो उस नये साध्यके साथ व्याप्तिका धर्म कैसे आ सकता है ? तो यों अनुमानकी बात करना भी वेकार है। शंकाकार कहता है कि शब्द सदृश होनेसे वाचक कहलाता है सो बात नहीं किन्तु वह एक है इस कारण वाचक हैं। प्रत्येक पुरुष यही जानता है कि मैंने जो पहिले सम्बन्ध ग्रहणका शब्द जाना था वही शब्द अब यहां हैं सो जान रहे हैं ? उत्तरमें कहते हैं कि बारबार उच्चारण किए जाने वाले शब्द एक समान हो जानेसे वे एक रूपसे निश्चयमें आ रहे हैं और ऐसे एकरूपसे निश्चयमें आना भी चाहिये। उस ही सदृशता से अर्थका ज्ञान होता है जिस सदृशतासे एकत्वमें प्रतीति होने लगे। जैसे रसोईघरमें धूम देखा था अब पर्वतमे धूम दिख रहा है तो उसे एक समान दिखता है और यों ही लगता कि वही धूम हैं एकत्वरूपसे जाना तो यह तो सदृशताकी शोभा है और उस सदृशतामें अर्थकी प्रतीति होती है, विशेष होनेसे नहीं होती।

सादृश्यकी व्यक्तिनिष्ठता—उक्त निराकरणसे यह भी अयुक्त हो गया कि जब तक शब्दका उच्चारण नहीं किया जा सकता तब तक वह सम्बन्धका कारण कैसे बने ? और उच्चारण किया हुआ शब्द नष्ट हो जाता है फिर उसके सम्बन्धसे प्रयोजन क्या रहा ? इस कारण शब्दको एक और नित्य मानना चाहिए। यह बात

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अयुक्त है ऐसी बात तो हम अनुमानमें भी कह सकते। जो धूम अदृष्ट है, देखा नही गया उसमें सम्बन्ध बनाया नहीं जा सकता और जो धूम दीखा था वह देखते ही नष्ट हो गया। अब उस धूमके साथ अग्निका सम्बन्ध बतानेका कोई प्रयोजन ही न रहा। इस तरह अनुमानकी भी बात करना बेकार हो जायगी। सदृश होनेसे सम्बन्ध बन जाता है। शंकाकार कहता है कि यह तो बतलावो कि वह सदृशता व्यक्तिसे अभिन्न है अथवा भिन्न है। एक है अथवा अनेक है। नित्य है अथवा अनित्य है? यदि भिन्न मानते हो, एक मानते हो, नित्य मानते हो व्यक्तिसे तो वह वही तो जाति हो गयी जो व्यक्तिसे भिन्नरूपसे सत् हो और एक ही एक समान रूपमें पाया जाता हो। और नित्य हो सदा रहता हो उस हीका नाम जाति है। उत्तर देते हैं कि यह कहना अयुक्त है। किसी भी अपने हेतुका एकका जैसा भी परिणमन है वैसा ही परिणमन होना सो दूसरे हेतुका सादृश्य कहा जाता है। पर वही हो सो नहीं है। जैसे अग्निके सिद्ध करनेमें हेतु दिया गया धूमका जो कि पूर्व परिचित रसोईघरका धूम था, उस का जैसा परिणमन था, रंग आकार आदिक उस ही प्रकारका पर्वतमें रहने वाला धूम सदृश मालूम पड़ा तो उस सदृश परिणामसे एकत्व जाना गया है, और हेतु बनाया गया है, परन्तु वह ही हेतु उस कारणसे बनाया गया हो सो नहीं, और वह परिणमन जिसकी सदृशताका परिणमन व्यक्तिसे भिन्न भी है, अभिन्न भी है क्योंकि दृष्टिभेदमें ऐसा ही प्रतीत होता है। चूंकि स्वरूप न्यारा है। व्यक्ति विशेषरूप है इस कारणसे भिन्न है। अभिन्न यों हैं कि यह सादृश्य व्यक्तिको छोड़कर अन्य किसी जगह नहीं रहता। मगर जातिको जाति पदार्थवादी इस प्रकारसे नही मानते हैं, उसे लोग नित्य और व्यापि मानते हैं। तो वह कथंचित भिन्न हुआ व्यक्तिसे और कथंचित् अभिन्न हुआ, इस तरहसे तो नही माना गया है और जैसे जाति मानी गई नित्य और व्यापक तो उस प्रकारकी जातिका तो सामान्यके निराकरणमें निराकरण किया जायगा। पृथक व्यक्तिसे जाति कोई सामान्य नामका पदार्थ नही है। मीमांसक जन ७ प्रकारके पदार्थ मानते हैं। द्रव्य, गुण, क्रिया, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ये मानोंके सातों एक दूसरेसे भिन्न हैं और अपनी अपनी सत्ता रखते हैं, तब यों सामान्यको भी भिन्न सत्ता मान लिया गया है। पर यह सामान्य कोई भिन्न सत्ता नही है, वह तो वस्तु है। अवान्तर सहित पदार्थसे जो सादृश्यका अविशेष उससे जाना गया है, सामान्य तो जातिरूप बनता है। सामान्यमें अर्थक्रिया नही होती, न उसमें घटाव बढ़ाव होता है। जैसे किसीको दूध चाहिये तो वह गाय सामान्यसे दूध न ला सकेगा, गाय व्यक्तिसे दूध ला सकेगा। सामान्य व्यक्तिसे भिन्न कुछ हो वह ठीक नही है। प्रतीतिमें ही नही आता इस कारण जिसमें प्रवृत्तिकी इच्छा है, प्रवृत्तका सत्व रखना चाहता है उसे अनुमानसे व शब्दसे सामान्य मात्रकी प्रतिपत्ति न मानना चाहिए अर्थात् लिङ्ग शब्द भी व्यक्तिरूप होता है और उनसे जो कुछ समझा गया है साध्य और अर्थ वह भी व्यक्तिरूप होता है। इससे शब्द जब व्यक्तिरूप है तब अनित्य नही हो सकता।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शब्दसे सामान्यविशेषात्मक ज्ञान—अब शंकाकार कहता है कि विशेषको छोड़कर सामान्य कुछ चीज ही लक्ष्यमें नही आ रही अथवा सामान्य अगर नही है विशेष भी अर्थ नही है, विशेषका ज्ञान तो लक्षित लक्षणसे जाना जाता है। अर्थात् सामान्यसे तो समझा गया विशेष फिर विशेषका ज्ञान सामान्यसे उत्पन्न हुआ है और इस तरह विशेषकी प्रतिपत्ति हो जानेसे हमारे प्रतीति आदिकका अभाव नही हो सकता। जब व्यक्ति और विशेष जान लिया जाता है तो उससे प्रवृत्ति होने हो लगती है। उत्तर देते हैं कि यह बात युक्त नही है, क्योंकि यहां क्रम प्रतीति नही होती। सामान्यके पहिले प्रतीति हो और उस प्रतीतिसे विशेषकी प्रतिपत्ति हो ऐसा भाव नही दृष्टिमें आता ऐसा अनुमान नही होता किसी को कि शब्दसे वाच्यका प्रतिभास उत्पन्न हो, उस समय पहिले सामान्यका प्रतिभास हो और पीछे विशेषका प्रतिभास हो। देखते हो सामान्यविशेषात्मक पदार्थका प्रतिभास हो जाता है जानने समझनेमें प्रथम व्यक्ति आता है तब ऐसे ऐसे अनेक अनुमानोंमें सदृश परिणामको देखकर फिर सामान्यका बोध किया जाता है। इससे यह कहना कि सामान्यसे सत् विशेषका ज्ञान होता यह अयुक्त है।

शब्दलक्षित सामान्यसे विशेषप्रतिपत्तिके विकल्प और उनका निराकरण—अब बतलावो कि सामान्यसे विशेषका जो ज्ञान होता हैं, विशेष लक्ष्यमें आता है या साधारण रूपसे साथ लक्ष्यमें आता है। उसमें पहिला पक्ष तो नही दे सकते, क्योंकि विशेष प्रतिनियत रूपसे ही लक्ष्यमें आया है और सामान्यरूपसे लक्ष्यमें नही आया। शब्दके उच्चारण करनेके समय जातिमें नियमित विशेष असाधारणरूप से अनुभवमें आये यह बात तो समझमें नही आती किसीको। क्योंकि इस तरह यदि विशेष जाति संयुक्त होकर प्रतिनियत रूपसे समझमें आये तो सबका प्रत्यक्ष एक समान हो जायगा। फिर उसमें यह कहना कि यह अमुक व्यक्ति, है यह अमुक व्यक्ति है ऐसा उसमें भेद प्रतिभास नही बन सकता। दूसरी बात यह है कि जातिका प्रतिनियतरूपके साथ अविनाभाव सम्बन्ध नहीं है, फिर जातिके द्वारा विशेषका लक्षण कैसे बनेगा इससे पहिला पक्ष तो सिद्ध नही होता कि सामान्यसे विशेष प्रतिनियतरूपके द्वारा लक्ष्यमें आया करता है। तब दूसरा पक्ष लो कि सामान्यमें विशेष साधारणरूपसे लक्ष्यमें आया करता है तो यह कहना यों युक्त नही है कि साधारण रूपसे जाने हुए भी विशेषमें अर्थ क्रिया नही बन सकती। जब विशेष एक साधारण रूपसे ही जाना गया तो उससे काम कैसे बनेगा ? जैसे घड़ेको कोई घड़ेके रूपसे जाने तो सामान्य मिट्टीके रूपसे जाने हुए घड़ेसे कोई जल कैसे भर लायगा ? कहीं कोई सामान्य मिट्टीरूप कल्पित घड़ेसे भी जल भरकर लाया करता है क्या ? जैसे खानमें पडी हुई मिट्टी सामान्यरूप है, उससे कोई पानी भरकर लाता है क्या ? नही लाता। इसी तरह जो विशेष है उसे भी जब सामान्यरूपसे उत्पन्न माननेमें लगे हों तो उससे भी अर्थ क्रिया नहीं हो सकती। जब उस विशेषमें अर्थ क्रिया नहीं हो सकती तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

फिर उससे प्रवृत्ति नहीं बन सकती। प्रवृत्तिका कारण वही होता है जिसमें कोई अर्थक्रियाका होना और परिणमनका होना यह प्रतिनियतरूपसे ही सम्भव है। साधारणरूपसे जाने विशेषमें यह बात सम्भव नहीं हो सकती, फिर भी साधारण रूपसे विशेषकी प्रतिपत्ति मानी जायगी तो अनवस्था दोष होगा। वह किस तरह ? कि साधारणरूपसे तो विशेषकी प्रतिपत्तिको तब विशेष प्रतिपत्ति होनेपर अर्थात् उस विशेषके साधारण ढंगसे प्रतिपत्ति होनेपर कहलायेगा कि सामान्यसे, सामान्यकी प्रतिपत्ति हुई। इस तरह जब सामान्यसे सामान्यकी प्रतिपत्ति होगी तब सामान्यकी प्रतिपत्ति होगी। फिर विशेषकी प्रतिपत्ति हो ही नही सकती, क्योंकि साधारण रूप का अर्थ क्या है ? सामान्यस्वभाव। यदि विशेषका ज्ञान साधारणरूपतासे होता है तो उसका अर्थ है कि वह विशेष सामान्य स्वभावसे ज्ञात होता है। तो सामान्य ही रहा, फिर विशेष कुछ चीज न रही।

शब्दसे जातिका ही ज्ञान होनेपर व्यक्तिसे असम्बन्धका प्रसंग—अब यह बतलावो कि यदि कोई शब्दसे जाति जानी गयी तो फिर व्यक्तिकी क्या बात उसमें आयी, जिसके कारण फिर यह शब्द उस व्यक्तिका बोध कराये। अब यहां बोध शब्दसे तो माना जातिका बोध, व्यक्तिका बोध नहीं माना तो जब शब्दोंसे जाति जानी गई तो फिर जाति ही जानी जाय, उसमें व्यक्तिकी क्या बात आयी जिसके कारण यह शब्द व्यक्तिको जान ले। यदि कहो कि उन दोनोंमें सम्बन्ध है सामान्य और विशेषमें। तो शब्दसे तो जाना सामान्य और सामान्यसे सम्बन्ध है विशेषका तो यों शब्दसे ही विशेषका भी ज्ञान कर लिया गया। उत्तर देते हैं कि उन दोनोंका, जाति और व्यक्तिका यदि सम्बन्ध माना है जाना है तो वह उस ही समय जाना है जिस समय शब्दके उच्चारणके समय शब्दसे जातिका ज्ञान हो रहा है अथवा उससे पहिले जाना है। विकल्प यों किया जा रहा है कि तुम कहते हो कि शब्दसे तो जाना जाता है जातिको और जातिसे जाना जाता है व्यक्तिको। व्यक्तिको सीधे शब्दों से नहीं जानता तो शब्दसे जातिके जान लेनेपर व्यक्तिका उसमें आया क्या ? तो जातिसे व्यक्ति भी जान लिया जाय ऐसा सिद्ध करनेके लिये तुम मान रहे हो सामान्य और विशेषमें सम्बन्ध, तो वह जो जाति व्यक्तिका सम्बन्ध है वह कब समझा गया है, जिस समय शब्दसे जातिका ज्ञान किया जा रहा है। क्या उस समय समझा है या जातिका ज्ञान किया जा रहा है उससे पहिले ही समझ लिया।

शब्दलक्षित सामान्यसे व्यक्तिके सम्बन्धके अवगमकी असिद्धि—उक्त दो विकल्पोंमेंसे प्रथम विकल्प तो युक्त है नहीं। अर्थात् जाति और व्यक्तिका सम्बन्ध शब्दसे जातिके ज्ञानके समयमें ही समझ लिया गया। यह बात यों युक्त नही बनती कि व्यक्ति तो अभी समझा ही नही गया। जब व्यक्ति ही नही समझा गया तो उस समय वह जानी गई जाति तो सम्बन्ध कैसे समझ लिया गया ? सम्बन्ध तो उसका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ही समझा जा सकता है कि जिसका सम्बन्ध जानना है उन दोनोंका ज्ञान हो रहा हो। अब शब्दसे तो केवल जाति ही ज्ञात होती है व्यक्ति तो ज्ञात होता नहीं। तो शब्दसे जातिका ज्ञान करते समय उस जातिका और व्यक्तिका सम्बन्ध नहीं जाना जा सकता है। अन्यथा यदि शब्दसे जातिके बोधके समयमें ही व्यक्ति भी जान ली गई तो फिर लक्षित लक्षण कैसे बने? तो पहिले सामान्यका ज्ञान होता है फिर सामान्यके ज्ञानसे विशेषका ज्ञान होता है। यह लक्षित लक्षण फिर वहां युक्त नही हो सकता है क्योंकि व्यक्तिके न जाननेपर व्यक्तिके सम्बन्धका ज्ञान नहीं हो सकता। सम्बन्ध तो द्विष्ठ होता है अर्थात् दो पदार्थोंमें रहता है। तो शब्दसे जब जाति और व्यक्ति दोनों जान लिए जायें तो जाति और व्यक्तिमें फिर सम्बन्धकी बात कहो जा सके, पर ऐसा तो हो ही नही रहा। तो इस प्रकार पहला पक्ष सिद्ध न हो सका कि शब्दसे जातिके परिज्ञानके समयमें ही व्यक्ति जान लिया जाता। यदि कहो कि शब्दसे जातिके जान लेनेसे पहिले व्यक्ति जान लिया गया है तो उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो यह सम्बन्ध भी उस ही समय हो जाय। जिस समय व्यक्तिका परिज्ञान हुआ उस समय जाति और व्यक्तिका सम्बन्ध भी हो गया। ऐसा नही होता कि एक समय उसका सम्बन्ध हो और अन्य समय उसका सम्बन्ध बने नही, क्यों नही कि जातिका स्वरूप विशेषनिष्ठता है अर्थात् विशेष व्यक्तियोमें जाति रहती है, यही स्वरूप है और फिर जाति नित्य है, व्यापक है, एक है, यह कहना यों अयुक्त है कि जब हम व्यक्तियोंको नाना देख रहे हैं तो उन व्यक्तियोके बीच बीच अंतरालमें हमें कुछ सामान्यका स्वरूप तो नजर नही आ रहा। इससे सिद्ध है कि सामान्य व्यक्ति निष्ठ ही होता है। जहाँ व्यक्ति है, उनका जो सादृश्य है उस सदृश परिणामके प्रतिपेधका ही नाम जाति है तब फिर इस जातिका व्यक्तिका अविनाभाव कहां रहा, तो यह कहना कि शब्दसे जाति जानी जाती है फिर जातिके ज्ञानसे व्यक्ति जाना जाता है यह बात अयुक्त है।

शब्दसे व्यक्तिके अवगमकी सिद्धि शब्दसे एकदम व्यक्ति जान लिया जाता है। जिस अर्थका वाचक शब्द बोला जाय उस शब्दके बोलते ही उसके ही अर्थका परिज्ञान होता है। कहीं ऐसा क्रम नही देखा गया कि किसीने गाय कहा तो गाय शब्दसे गोत्व ऐसा कोई अनुभव नहीं करता बल्कि गाय शब्द सुनकर अथवा गाय अर्थ को देखकर एकदम उस गाय व्यक्तिका ज्ञान होता है फिर उसमें गाय सामान्यपना है सभी गायोंमें रहता है ऐसा गोत्व है ऐसी जातिकी कल्पना उसके बाद हुई है। तो शब्द नित्य है और शब्दसे जाति जानी जाती है वह जाति भी नित्य है फिर जातिसे विशेष जाना जाता है ऐसा घटित करना ठीक नही है, किन्तु सीधा मानना चाहिये कि कंठ, तालू आदिक स्थानोंके प्रयोगसे शब्दोंकी उत्पत्ति होती है और जिस प्रकारके शब्दोंसे जिस अर्थका सम्बन्ध जोड़ा गया था उस ही प्रकारका शब्द जब यहाँ उच्चारण में आया तो उस शब्दसे उस अर्थका परिज्ञान किया गया। शब्द एक होनेसे अर्थका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञान होता है यह बात युक्त नहीं है किन्तु शब्दकी सदृशता है तो सदृश शब्दसे पदार्थ का ज्ञान हुआ करता है। अत: शब्द अनित्य है, अव्यापक है और एक नहीं है अनेक है। इस सम्बन्धमें तो सभी लोगोंको यथार्थ परिज्ञान रहता है कि हाँ सर्वप्रथम इन्द्रिय द्वारा व्यक्तिका परिज्ञान होता है और व्यक्तिके परिज्ञानके बाद फिर उससे जाति, गुण क्रिया आदिक सब कुछ ज्ञात किया जाता है तो यह सब फिर एक जातिमें सम्बन्धित है, व्यक्तिसे तो व्यक्तिका काम होता है। परस्पर सामान्य जाति माना क्यों गया कि जब व्यक्ति है तो उसमें जो कुछ पाया जाता है, उससे सामान्य बनता है। यों शब्दसे सीधे अर्थकी प्रतीति होती है और शब्द अनित्य है सदृश है उससे अर्थका ज्ञान होता, शब्दको नित्य सिद्ध करना फिर आगमको अपौरुषेय मानना ऐसा परिश्रम करना व्यर्थ है। प्रमाणता अपौरुषेयत्वसे नहीं किन्तु गुणवान वक्तासे आया करती है।

सामान्य द्वारा प्रतिनियतरूपसे विशेषकी प्रतिपत्तिकी अशक्यता—शंकाकारके मतमें जातिसे व्यक्ति परिलक्षित होता है अर्थात् जाति वास्तविक पदार्थ है और सर्वप्रथम ज्ञानमें जाति आती है और जातिकी प्रतिपत्तिके बाद फिर व्यक्ति लक्ष्यमें आता है ऐसी वार्ताके मध्य शंकाकारसे पूछा जा रहा है कि सामान्यमें जो विशेष लक्ष्यमें आता है वह क्या प्रतिनियतरूपसे लक्ष्यमें आता है या साधारणरूपसे लक्ष्यमें आता है या असाधारणरूपसे लक्ष्यमें आता है, अर्थात् सामान्य तो साधारूपसे ज्ञानमें आता है, इसमें तो विवाद है नहीं। अब उस सामान्यसे जो विशेष लक्ष्यमें आया है वह विशेष क्या प्रतिनियत रूपसे आया है अर्थात् असाधारण गुणको दृष्टिमें रख करके विशेष लक्ष्यमें आया या साधारण ही रूपसे आ गया ? इन दो विकल्पोंमें से प्रथम विकल्प तो युक्त है नहीं, क्योंकि सामान्यसे विज्ञात किये गये विशेषमें प्रतिनियतरूपसे प्रतीति नहीं होती। ऐसा नहीं अनुभवमें आता कि शब्दके उच्चारणके समयमें जाति परिमित विशेष कोई असाधारण रूप लेकर अनुभवमें आता हो अन्यथा याने शब्दोच्चारण सम्बन्धमें जाति सम्बन्धित विशेष यदि प्रतिनियतरूपसे अनुभवमें आये तो फिर प्रत्यक्ष विषयोंमें विशेषता न रहेगी और फिर प्रतिनियतरूपसे प्रतीति नहीं होती। ऐसा नहीं अनुभवमें आता कि शब्द के उच्चारणके समयमें जातिपरिमित विशेष कोई असाधारण रूप लेकर अनुभवमें आता हो। अन्यथा याने शब्दोच्चारण सम्बन्धमें जाति सम्बन्धित विशेष यदि प्रतिनियतरूपसे अनुभवमें आये तो फिर प्रत्यक्ष विषयोंमें विशेषता न रहेगी और फिर प्रतिनियतरूपसे जातिका अविनाभाव है नहीं, फिर प्रतिनियतरूपसे विशेषका लक्षण कैसे बनेगा ? अब सामान्यसे विशेषका परिज्ञान कैसे होगा क्योंकि सामान्यका विषय है जाति, व्यक्तिका विषय है प्रतिनियत रूप। तो जातिका प्रतिनियत रूपके साथ अविनाभाव है नहीं तब फिर विशेषका ज्ञान कैसे होगा ? प्रतिनियतरूपसे यह प्रथम वचन तो युक्त न बैठा !

सामान्यद्वारा साधारणरूपसे विशेषप्रतिपत्तिकी अशक्यता—अब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

द्वितीय विकल्पकी बात सुनो ! यदि कहो कि सामान्यसे विशेषरूप लक्ष्यमें आया है वह भी साधारणरूपसे लक्ष्यमें आया है. यह मंतव्य क्यों युक्त नही है कि साधारणरूप से जो विशेषरूप जाना गया है उसमें अर्थक्रिया करनेकी सामर्थ्य नहीं। जो साधारण रूपसे युक्त है उसमें काम कैसे बनेगा ? जैसे घड़ा बना और, उस घड़ा सामान्यको मिट्टी सामान्यसे ही जाना गया, मतलब जैसे और मिट्टी है पड़ी हुई खानमें उस ही तरहके सामान्यरूपसे युक्त घड़ा है तो अन्य पड़ी हुई मिट्टीकी तरह घड़ेसे कैसे कार्य बन जायगा ? जब अर्थक्रिया न बन सकी तब फिर प्रवृत्तिका कारण भी न बनेगा, फिर दुनियामें पदार्थोंके जाननेसे फायदा क्या ? जब पदार्थको जानकर उससे अर्थ-क्रिया नही बन सकी तब फिर प्रवृत्तिका कारण भी न बनेगा। फिर दुनियामें पदार्थों के जाननेसे फायदा क्या ? जब पदार्थोंको जानकर उसकी अर्थक्रिया नहीं बनती और उससे फिर हितकी प्राप्ति अहितका परिहार नहीं बनता जिससे प्रवृत्ति की जा सकती हो, तब जानकारी भी व्यर्थ है। प्रवृत्ति जो होती है वह अर्थ क्रियाकारी विदित होने पर होती है। अर्थक्रिया होती है तो प्रतिनियत स्वरूपमें ही होती है। जैसे पानी भरने का काम प्रतिनियत रूप वाला घड़ा ही कर सकेगा, सामान्य मिट्टी न कर सकेगी, फिर भी सामान्यरूपतासे विशेषकी प्रतिपत्ति की तो सामान्यसे सामान्यकी प्रतीति होनेपर सामान्य प्रतीति ही रही, विशेष प्रतीति क्या कहलाई ? भाव यह है कि जाति और व्यक्ति इन दोके सम्बन्धमें सोचा जा रहा है। जातिके मायने तो है सामान्य जिसमें सब आ जायगा और व्यक्तिके मायने कोई प्रतिनियत। एक तो जो व्यक्ति है उसे भी जब साधारणरूपसे लक्ष्यमें आना मान लिया तो विशेषका भी तो अर्थ उतना ही रहा जितना कि सामान्यका। सामान्य और करता ही क्या है ? सामान्यका बोध करा देता है, तो विशेषका भी सामान्यरूपसे बोध हुआ तो दोनोंमें अन्तर क्या रहा ? क्योंकि जातिका भी साधारणरूप स्वभाव है और अव्यक्तिको भी साधारणरूपसे प्रतिपन्न माना है इस कारण यह ही सिद्ध न हो सकेगा कि सामान्यसे विशेष लक्ष्यमें आया करता है।

शब्दसे जाति प्रतिपत्ति माननेपर व्यक्तिमें अकिञ्चित्करताका प्रसंग—और, भी सुनिये यदि कोई शब्दसे जाति प्रतिपन्न होता है तो हो, इस व्यक्ति में क्या आया। जिस कारणसे कि यह जाति व्यक्तिका गमक बने। शंकाकारके सिद्धान्तमें शब्द नित्य है पर सुनाई जो नहीं देता सो अभिव्यञ्जनके नामसे नहीं सुनाई देता। जब कोई अभिव्यञ्जकता रूप कंठ ओंठ आदिक इनका समागम जुटता है तो शब्द प्रकट होता है। तो चूंकि कैसे ही शब्द प्रकट होते तो उनमें यह समझा जाता कि यह वही शब्द है। तो उस शब्दके सुननेसे जातिका बोध होता है। इसपर कहा जा रहा है कि अगर शब्द सुननेसे सामान्यका बोध हुआ तो, उससे व्यक्तिमें क्या बात आयी जिससे कि शब्दलक्षित जाति व्यक्तिको जानने लगे। यों उलट फेर करके माना है शंकाकारने कि शब्दसे होता है जातिका ज्ञान और जातिसे होता है

http://sahjanandvarnishastra.org/

विशेषका ज्ञान तो पूछते हैं कि शब्दसे जाति जानी गई तो व्यक्तिमें क्या बात आ गई ?

शब्दसे जातिबोधके कालमें जाति और व्यक्तिके सम्बन्धावगमकी असिद्धि—यदि कहो कि जाति और व्यक्तिका सम्बन्ध है सो शब्दसे जातिके जान लेनेपर व्यक्ति भी जान लिया जाता है तो इस सम्बन्धमें पूछा जा रहा है कि शब्दसे जातिके बोधके कालमें जो जाति और व्यक्तिका सम्बन्ध ज्ञानमें आता है या पहिले ही ज्ञानमें आया है ? यहाँ दो विकल्प किए कि जाति और व्यक्तिका जो सम्बन्ध ज्ञात होता है वह क्या शब्द जातिके जान लेनेके समय ही हो जाता है या शब्दसे जातिको जाननेसे पहिले ही हो जाता है ? उस ही समय तो हो नहीं सकता। क्योंकि जब जाति जानी जा रही है शब्दोच्चारणके समयमें तो व्यक्तिका कहाँ ज्ञान हो रहा और ऐसा माना है शंकाकारने कि शब्दके उच्चारणके समयमें केवल जाति ही प्रतिभासित होती है और साथ ही उसके समर्थनमें कहा भी है शंकाकारने कि यदि शब्दोच्चारणके समय केवल जाति ही ज्ञानमें न आये, व्यक्ति ज्ञानमें आ जाय साथ ही तो फिर लक्षित लक्षण माननेकी क्या बात है ? लक्षित लक्षण कहते हैं कि सामान्यसे जानी गई जाति और जानी हुई जातिसे जाना गया विशेष अर्थात् शब्दसे जाना जाति, जातिसे जाना व्यक्ति इसको कहते हैं लक्षितलक्षण। तो लक्षित लक्षणका मंतव्य ही यह सिद्ध करता है कि शब्दोच्चारणके समय शब्दसे केवल जाति ही प्रतिभासमें आती है। व्यक्तिके न जाननेपर उसके सम्बन्धका भी तो ज्ञान नहीं हो सकता। समाधानमें कह रहे हैं कि शब्दसे केवल जाति ही जानी गई, विशेष नहीं जाना गया तो सामान्य और विशेषका सम्बन्ध नहीं जाना जा सकता क्योंकि सम्बन्ध होता है इसीमें रहने वाला और सम्बन्ध यहां सोचा जा रहा है जाति और व्यक्तिका और जब सामान्य ही शब्दसे जाना गया तो सामान्य और व्यक्तिका सम्बन्ध कैसे जान लिया जायगा ? इससे यह तो सिद्ध हो नहीं सकता कि शब्दके उच्चारणके समयमें जाति और व्यक्तिका सम्बन्ध हो जाता है।

शब्दसे जाति बोधकालके पूर्व जाति व व्यक्तिके सम्बन्धावगमकी असिद्धि—अब दूसरे विकल्पकी बात सुनो। दूसरे विकल्पमें शंकाकारको यह सोचा या गया था कि क्या शब्दसे जातिके बोधसे भी पहिले जाति और व्यक्तिका सम्बन्ध जान लिया जाता है ? इस तरह यदि जो जाति और व्यक्तिका सम्बन्ध पहिले जान लिया जाय तो भी उस ही समय यह सम्बन्ध रहे। पूर्वमें जाना शब्द बोलनेसे पहिले तो उस ही पूर्वसे सम्बन्ध रहो, बादमें सम्बन्ध कैसे आ गया। ऐसे समयमें जाति और व्यक्तिका सम्बन्ध हो तो वह सम्बन्ध अन्य समय भी हो यह बात नहीं, क्योंकि ऐसा माननेपर बहुत दोष आयगा ? यदि घट और पटका एक समय सम्बन्ध है, घड़ेपर छन्ना रखा है तो एक समय सम्बन्ध होनेपर फिर यह हीं सर्वदा सम्बन्ध बन बैठेगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जातिपदार्थवादमें जातिकी व्यक्तिनिष्ठताकी असिद्धि—अन्य बात यह भी है कि जातिका विशेष निष्ठता ही स्वरूप नहीं है, क्योंकि जाति तो माना शङ्काकारने सर्वव्यापक और नित्य व्यक्तियां कहा है सर्वव्यापक। जैसे मनुष्य क्या भिचे भये दुनियामें रखे भये हैं ? एक मनुष्यसे दूसरे मनुष्यका कितने ही हाथोंका अन्तर रहता है। तो जातिविशेष निष्ठ मान लेता शङ्काकार तो उसमें इसे यह भय था कि जाति व्यापक न रहती। जहां मनुष्य रहता वहां जाति रहती, जब विशेष निराकरण नहीं मानते, जब विशेषनिष्ठ नहीं मानते, तो भी जाति तो सदा रहती है। तो जाति अलग चीज हुई व्यक्ति अलग चीज हुई। तो जाति विशेषनिष्ठ तो नहीं कहलाया। विशेषनिष्ठ होनेपर व्यक्तिके बीचमें जातिके स्वरूपका असत्व हो बैठेगा। तो इससे शङ्काकारने जातिको माना नित्य सर्वव्यापक और विशेषको व्यापक नहीं माना। तब फिर जाति और व्यक्तिका अविनाभाव कैसे बन जायगा ? इससे यदि शब्दसे जाति जान ली गई तो ठीक जान लो मगर उससे व्यक्ति कुछ न आयगा क्योंकि जाति और व्यक्तिका सम्बन्ध ही नहीं। जाति विशेषनिष्ठ तो नहीं माना। विशेषको भी माना है जहाँ व्यक्ति नहीं है वहां भी जाति है। तो जैसे आकाश सर्वव्यापक है, इससे यह न कह सकेंगे कि आकाशसे सामान्यका अविनाभाव है। इसी तरह उस जातिका व्यक्तिसे अविनाभाव नहीं बनता तो सम्बन्ध भी नहीं बनता जाति और व्यक्तिका। और जब सम्बन्ध नहीं बनता तो शब्दसे जाति जान ली गई तो व्यक्ति तो न जाना जा सका। और व्यक्ति न जाना जा सके तो फिर न कोई प्रवृत्ति रहेगी न अर्थक्रिया रहेगी। न कुछ भी व्यवहार चलेगा।

जातिपदार्थवादमें जातिके व्यक्तिनिष्ठत्वके अवगमकी असिद्धि—अब और प्रसंगकी बात सुनिये कि यदि जातिको व्यक्तिनिष्ठ मानते हो तो यह बतलावो कि सभी समय जाति व्यक्ति निष्ठ है या किस ही समय जाति व्यक्ति निष्ठ है। यदि कहो कि सभी समय जाति व्यक्ति निष्ठ है। विशेषमें रहने वाली है तो यह बात तुमने प्रत्यक्षसे जाना या अनुमानसे ? जाति व्यक्तिमें सदा रहती है इसका ज्ञान तुमने कैसे कर लिया ? प्रत्यक्षसे तो नहीं किया। प्रत्यक्षसे किया हो तो यह बतलावो कि एक साथ ही जाना सब या क्रमसे ? अर्थात् जाति समस्त व्यक्तियोंमें निष्ठ है यह बात तुमने एक साथ जाना। यह तो असम्भव है, क्योंकि दुनियामें जितने व्यक्ति हैं सर्व व्यक्तियोंका प्रतिभास न हो पाया तो व्यक्तियोंका प्रतिभास न हो पाया तो व्यक्तियोंसे जातिका सम्बन्ध निर्णय करना भी अशक्य है। तो सर्व व्यक्तियोंका एक साथ प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। यदि कहो कि क्रमसे ज्ञान होता जायगा तो यह बात यों ठीक नहीं बनती कि समस्त व्यक्ति तो हैं सीमा रहित, उसमें हैं अनन्त व्यक्ति। तो उन व्यक्तियोंकी परम्परा जाननेमें आ ही नहीं सकती। इससे प्रत्यक्षसे यह नहीं विदित हो सकता कि जाति सदा व्यक्ति निष्ठ ही होती है। यदि कहो कि जाति व्यक्तिमें कभी कभी निष्ठ होती है तो इसका अर्थ यह हुआ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो फिर जातिका विशेषनिष्ठ होना सदा न रहा, सब जगह न रहा। तो यों प्रत्यक्षसे यह बोध होना असम्भव है कि जाति व्यक्तियोंमें ही निष्ठ रहती है लेकिन अनुमानको तो मान लिया जायगा। समाधानमें कहते हैं कि यह भी बात ठीक नही है क्योंकि अनुमान प्रत्यक्ष पूर्वक ही बनता है। तो उससे फिर साध्यकी सिद्धि की जाती है और प्रत्यक्षकी प्रवृत्ति यहाँ होती नहीं तो अनुमानकी भी प्रवृत्ति नही हो सकती। तब फिर लक्षित लक्षणासे विशेष प्रतिपत्ति होती है, यह बात युक्त नही। लक्षित लक्षणासे यह तात्पर्य है कि शब्दसे तो सामान्य लक्षित हुआ और इस सामान्यसे फिर लक्षणा बनी अर्थात् विशेषका ज्ञान हुआ यह पद्धति नही बन सकती। इससे यह मानना चाहिये कि वाच्य वाचकमें सामान्य विशिष्ट विशेषरूपता है। जैसे धूमादिक में पहिले जाना था रसोईघरका धूम और अब जान रहे हैं पर्वतका धूम तो पर्वतका धूम सामान्य विशिष्ट विशेषरूप है अर्थात् वह धुवाँ न केवल व्यक्तिरूप है न केवल जातिरूप है किन्तु जाति को न छोड़कर उस सामान्यरूपसे विशिष्ट होकर व्यक्ति जाना गया है।

पदार्थमें सामान्यविशिष्ट विशेषरूपता—अब शङ्काकार कहता है कि धूम आदिकके तो सामान्यका सद्भाव है तब फिर उस सामान्यको विशिष्ट धूमादिक की उपपत्तिका तो गमकपना आ जायगा पर सामान्यमें तो विशेषका अभाव है तब फिर सामान्य विशिष्ट विशेषरूपता नहीं बन सकता फिर वह अर्थका ज्ञापक बन नहीं सकता। विशेषका सामान्यमें अभाव है यह कैसे जाना कि जब हम दूसरे वर्णको ग्रहण करते हैं तो दूसरे वर्णका तो ग्रहण करते हैं तो दूसरे वर्णका इस समय प्रत्यभिज्ञान नही होता। इससे सिद्ध है कि शब्दमें विशेषका अभाव है। वही शब्द है। शब्द कोई दूसरा होता ही नहीं है। जहां ही सामान्य है तो वहाँ एकके ग्रहण करने पर दूसरे व्यक्तिका स्मरण होता है। जैसे रोझमें और गायमें समानता है—आकार, सींग, मुह आदिक उनके मिलते जुलते हैं तो कुछ सामान्य आया तो वहां तो यह बन जायगा कि रोझके देखनेसे गायका प्रत्यभिज्ञान हुआ, पर यहां तो वर्णान्तरोंमें विशेषता नही है। दूसरा वर्ण जिसे ग्रहण किया तो उस सम्बन्धकका अनुष्ठान तो नही होता। एक ही वर्ण आता। जैसे गायकी रोझमें विशेषता है और सामान्य भी है तो वहाँ तो सामान्य विशिष्ट विशेष ज्ञानमें आ जायेंगे मगर शब्दमें तो विशेष है ही नहीं। सब न्यारे न्यारे शब्द हैं और वे सामान्यरूप हैं। जैसे १६ स्वर ३२ व्यञ्जन आदिक जो भी शब्द हैं बस वे उतने हैं। तो वहां कोई ग बोले तो क का कोई ख्याल नही करता। इससे सिद्ध है कि वहां विशेष है नही तो शब्दमें यह बात नही घटित हो सकती कि सामान्य विशिष्ट विशेषणका ज्ञान हुआ करता है। अनुमानमें तो बात बन जायगी कि धूमसे अग्निका ज्ञान होता है और वह धूम सामान्य विशिष्ट विशेषरूप है, धुवाँ तो व्यक्तिरूप है जिसमें व्यतिरेक पाया जाय वह व्यक्ति कहलाता है। धुवां यद्यपि व्यक्तिरूप है पर धूमत्व सामान्य जाति भी पड़ा रहता है, किन्तु शब्दमें सामान्यविशेषरूपता नही है। अब समाधानमें कहते हैं कि यह बात कुछ अयुक्त है। ग

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आदिक अन्य वर्णोंके ग्रहणके कालमें अन्य वर्णोंका ग्रहण होनेपर यदि यह भी वर्ण है ऐसे अनुसंधानका अभाव है तो फिर उससे अनुष्ठानका अभाव असिद्ध है क्योंकि उस प्रकारका अनुष्टान पाया जा रहा है। सो अनुष्ठानका अभाव असिद्ध है। यह वही वाच्य है ऐसा लोगोंको स्मरण होता है इसलिए उसमें सामान्य विशिष्ट विशेषरूपता बन जायगी।

वर्णमें सामान्यविशेषात्मकताकी चर्चा यदि कहो कि न आदिक अन्य वर्णोंके ग्रहणपर यह भी आदिक है ऐसा अनुसंधान न होनेसे सामान्यका सद्भाव नहीं है। यदि आप कहते हो तो कई गायोंमें कोई चितकबरी गाय देखा तो उसके देखने पर भी यदि कोई काली गाय है तो यह भी काली है ऐसा अनुष्ठान नहीं होता तो गायपनेका भी अभाव हो जायगा। यह भी गाय है। तो जैसे गायोंमें चितकबरी, लाल, काली आदिक अनेक गायोंका जब उनमें गाय सामान्यका बोध होता है, यही बात वर्णोंमें है। क ख ग आदिक वर्ण विशेष कुछ हैं और उनमें सामान्यका शरण पाया जाता है। जितने बार बोले गए वे सब क क व्यक्ति विशेष हैं और उनमें कपना सामान्य है। यदि कहो कि गऊ गऊ आदिक अनुगत आकारक ज्ञान होनेसे गायपनेका असत्त्व तो नहीं है अर्थात् गाय सामान्य बराबर तत्त्व है तो यह बात वर्णोंमें भी लगा लो। वहांपर भी वर्ण है इस प्रकार अनुगत आकाररूप ज्ञान होता है सो फिर किसी वर्णमें वर्णपनेमें ग आदिकका गत्वका, शब्दमें शब्दत्वका अभाव कैसे हो जायगा, क्योंकि सब बातें बिल्कुल समान हैं, निमित्तकी विशेषता नहीं है समानता सिद्ध करनेका निमित्त जब अनुगताकार प्रत्यय है अर्थात् वहां वही वही है इस प्रकार का बोध समानताका निर्णायक है तो यही बात वर्णोंमें भी पायी जाती है कि यह वर्ण है यह वर्ण है इस प्रकार वर्णोंमें वर्णत्वका अभाव नहीं है क्योंकि अनुगताकार प्रत्यय बराबर मिलता रहता है। अब वर्णोंमें एक एक वर्णको लेकर देखो —जैसे ग जितने भी प्रत्यक्षाभाव हैं पहिले बोले गए इस समय भिन्न भिन्न मनुष्योंके बोले गए भविष्यमें भी बोले जाने वाले ग आदिकमें गत्व बराबर मौजूद है और शब्दमें शब्दत्व मौजूद है। इस प्रकार अनुगताकार प्रत्यय बराबर होनेसे उनमें भी सामान्य पाया जाता है। समान और असमान रूप वाले व्यक्तियोंमें कहो समान है यह प्रत्यय तो सबमें अनुगत होता है और अन्यसे व्यावृत्त होता है। अर्थात् वृत्तियां अनेक हैं और किसी धर्मसे वह असमानरूप है तो जिस धर्मसे समान रूप है उस धर्मसे अनुगत है और जिस धर्मसे असमान रूप है उस धर्मसे वह एक दूसरेसे अलग है। तो जहां बोध की अनुवृत्ति अर्थात् वही वही है यह इस प्रकारके बोधका बराबर चलते रहना यह ग आदिकमें भी समान है इस प्रकार कैसे नहीं वहाँ सामान्यकी व्यवस्था हो सकी। यहां अनुगताकार प्रत्यय भी मिल गया तिसपर भी सामान्य नहीं मानते हो तो फिर जो गायोंमें लाली, पीली, काली, चित्तकबरी आदिक है उनमें भी सामान्य नहीं मानो। क्योंकि उन गायोंमें भी उस प्रकारके बोधकी अनुवृत्तिके बिना सामान्य मान लेनेपर

http://sahjanandvarnishastra.org/

हम कुछ मान लेनेमें हम कुछ और निमित्त नहीं देख रहे अर्थात् अनुगताकार प्रत्यय का होना ही सामान्यके माने जानेका वास्तविक कारण है और यह कारण शब्दोंमें वर्णोंमें इनमें भी पाया जाता है।

सवर्णोंमें अनुगताकारता न माननेपर अन्य वर्णोंमें व्यावृत्तत्वके अभावका प्रसंग –यदि कहो कि यहाँ अनुगत अबाधित इन्द्रिजन्य ज्ञानके विषयपना होनेपर भी गत्व आदिकका अभाव है अर्थात् ग आदिक वर्णोंमें अनुगत प्रत्यय भी हो रहा और अबाधित बात बन रही और कर्ण इन्द्रियसे उसका बोध भी हो रहा तिस पर भी अगर उन ग आदिक वर्णोंमें गत्व आदिकका अभाव माना जाय तो ग आदिक वर्णोंका भी अभाव हो जायगा। जब ग ग ग अनेक ग में अनुगत प्रत्यय होने से गत्व होना चाहिये सो नही मानते तो क आदिक अनेक वर्णोंमें जो कि एक वर्ण दूसरे वर्णसे अलग है, व्यावृत्त प्रत्ययके विषयभूत हैं उनका भी अभाव हो जायगा। तो इस प्रकार किस उच्चारणको तुम परार्थत्वात् इस हेतुसे नित्यपना सिद्ध करोगे ? जब यहाँ हेतुका साध्य ही न मिलेगा, ग आदिक वर्ण ही न मिलेंगे, पक्ष न मिलेगा तो नित्यत्व पना कैसे सिद्ध करोगे ? अब जो कहा गया था कि सादृश्यके द्वारा पदार्थोंकी प्रतिपत्ति नहीं होती है तो यह बात अयुक्त है क्योंकि सदृश परिणाम है लक्षण जिसका ऐसे सामान्यसे सहित जो व्यक्ति है वह अर्थका प्रतिपादक है। शब्द अर्थका प्रतिपादक है। शब्द अर्थका प्रतिपादक है और वह शब्द सदृश परिणाम वाला है। जितने अक्षर बोले गए थे पहिले वे ही अक्षर अब हैं, उनकी तरह हैं इससे सादृश्यसे अर्थकी प्रतिपत्ति बराबर बनती है। बारबार उच्चारण किए जाने वाले शब्द सदृशताके कारण एक रूपसे निश्चयमें आ रहे हैं सो जब उनमें प्रत्यभिज्ञा रहती है तुरन्त तो वह शब्द अर्थकी प्रतिपत्तिको करने लगता है। देखिये शब्द बोलनेके बाद जो अर्थका ज्ञान होता है इस बीच कितने ज्ञान हो जाते हैं। शब्द बोला तो सबसे पहिले सादृश्य प्रत्यभिज्ञान बना। पहिला प्रत्यक्ष बना। श्रवण इन्द्रियसे जाना फिर स्मृति बनी। ऐसे ही शब्द बोले गए थे, फिर सादृश्य प्रत्यभिज्ञान बना। उससे वह अपने कार्यमें एक रूपसे निश्चय करने वाला बना उससे फिर अर्थका बोध हुआ। तो अर्थके बोधके लिऐ शब्दको नित्य मानना ही पड़ेगा यह बात ठीक नही जचती। वह तो प्रत्यक्ष स्मृति प्रत्यभिज्ञान इन सब प्रमाणोंकी सहायतासे शब्दमें अर्थकी प्रतिपादकता हुआ करती है।

सादृश्यसे अर्थप्रतिपत्तिको भ्रान्त माननेपर अनुमानके अभावका प्रसंग—देखिये ! शब्द बोलनेके बाद जो अर्थका ज्ञान होता है उस बीच कितने ज्ञान हो जाते हैं। शब्द बोला तो सबसे पहिले सादृश्य प्रत्यभिज्ञान बना, पहिला प्रत्यक्ष बना। श्रवण इन्द्रियसे जाना फिर स्मृति बनी। ऐसे ही शब्द पहिले बोले गए थे फिर सादृश्य प्रत्यभिज्ञान बना। उससे वह अपने कार्यमें एकरूपसे निश्चय करनेवाला बना,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उससे फिर अर्थका बोध हुआ। तो अर्थके बोधके लिए शब्दको नित्य मानना ही पड़ेगा यह बात ठीक नहीं जचती। वह तो प्रत्यक्ष स्मृति प्रत्यभिज्ञान इन सब प्रमाणोंकी सहायतासे शब्दमें अर्थकी प्रतिपादकता हुआ करती है।

सादृश्यसे अर्थप्रतिपत्तिको भ्रान्त माननेपर अनुमानके अभावका प्रसंग

शङ्काकारने जो कहा था कि सादृश्यसे अगर अर्थकी प्रतीति करने लगोगे तो शाब्दिक ज्ञान भ्रान्त हो जायगा। सो इस तरह अगर सदृशतासे होने वाले अर्थज्ञा में भ्रान्त विज्ञान मानोगे तो फिर अनुमान प्रमाण भी न बन सकेगा किन्तु वहां धूम आदिकके देखनेसे अग्नि आदिककी प्रतिपत्ति हुई अग्निका पर्ि ज्ञान हुआ। तो वहां जो धूम देखा वहां तो सदृश धूम दिखी, जिस धूमको देखकर पहिले अग्निका अविनाभाव समझाया था वह धूम तो वहीं था, अब यह धूम नया है तो उसमें जो अग्निकी व्याप्ति की जाती है वह सदृशतासे की जाती है और अब सदृशता देखकर जो अर्थका ज्ञान होता है उसको मान लेते हो भ्रान्त ज्ञान तो यह भी भ्रान्त बन बैठेगा, फिर अनुमान प्रमाण क्या बनेगा? तो जिस तरह सदृश धूमको देखकर अग्नि आदिकका ज्ञान हो जाता है और वह अनुमान प्रमाण सम्यक प्रमाण बनता है इसी प्रकार सदृशतासे अथको जब प्रतीति होती है तो वहां शाब्दिक ज्ञान भ्रांत नहीं हो सकता।

सादृश्यविशिष्ट व्यक्तिरूप वर्णोंकी वाचकता – शङ्काकारने जो विकल्प किया था कि गत्वादिक वाचक है या ग आदिक व्यक्ति वर्ण वाचक है? शङ्काकार ने दो विकल्प बनाये थे कि शब्द सुनकर जो अर्थका ज्ञान होता है तो अर्थका ज्ञान गत्व है या ग आदिक वर्ण है। गत्व कहते हैं अनेक ग में रहने वाले सामान्य ग पना को। जैसे घट और घटत्व। जितने घट हैं उन सब घटोंमें रहने वाला सामान्यपन घटत्व है। इसी प्रकार जितने वर्ण हैं उन वर्णोंमें जो सामान्य है उसका नाम है वर्णत्व। अब क ख ग आदिक जो अनेक वर्ण हैं उनमें सामान्य हुआ कत्व, खत्व, गत्व आदिक। तो क्या इस तरह गत्ववाचक है या ग यह ज्ञप्तिरूप वर्ण वाचक है और इन विकल्पोंको उठाकर उनका निराकरण करना चाहा था कि गत्व वाचक होजायगा तो इसमें शङ्काकारका मत ही सिद्ध हो रहा है और यदि व्यक्ति वाचक बना हो तो व्यक्तिमात्र या व्यक्ति विशेष, व्यक्तिमात्र हो तो सामान्यमें गया या व्यक्तिमें अन्तर्भूत इन विकल्पोंको उठाकर दोष दिया गया था वे सब दोष निराकृत होते हैं। केवल इतने ही मात्रके समर्थनसे कि सामान्य विशिष्ट व्यक्तिरूप वर्णवाचक हुआ करता है, जितने भी वर्ण बोले जाते हैं क ख ग आदिक तो जितने भी क अब तक बोले गए और अनेक पुरुषोंके द्वारा बोले जा रहे और आगे बोले जायेंगे उन सब क आदिक वर्णोंमें क पनेका तो सबमें योग है। जितने भी क हैं सबमें कत्व पाया जाता है, कत्व युक्त जो क है वह अर्थका वाचक है। कुछ शब्द मिल जुलकर अर्थके वाचक होते हैं। जो एकाक्षरी पद होते हैं वे एक ही अक्षरवाचक होते हैं। जैसे क मायने जल। तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सामान्यविशिष्ट व्यक्तिवाचक हुआ करता है इससे सिद्ध है कि वर्ण वाचक हो जाता है।

सादृश्य प्रत्यभिज्ञानका शब्दार्थप्रतिपत्तिमें खासा सहयोग—शङ्काकार कहता है कि सादृश्यसे अर्थकी प्रतीति किस तरह हो सकती है! एकपनाका जब तक अर्थका ज्ञान नहीं होता। जो ही शब्द उसने अर्थका सम्बन्धके ग्रहणके समयमें जाना था वही शब्द यह बोला जा रहा है ऐसा शब्दज्ञान होता है तब उससे अर्थकी प्रतीति होती है। जैसे कि पुरुषने बालकसे कहा कि काँचका गिलास लावो। तीसरेने सुना और यह देखा कि वह यह उठा लाया, तो झट समझ जाता कि काँचका गिलास मायने यह। अब जब जब काँचका गिलास यह शब्द बोला जायगा जब तब तब यह यह समझेगा कि जो शब्द केवल सम्बन्ध ग्रहण रूपसे समझ रखा था कि कि इस शब्दका सम्बन्ध है इस पदार्थके साथ वहाँ शब्द आज बोला गया तब अर्थको जानता है। समाधान करते हैं कि यह बात यों अयुक्त है कि वाचक बननेके लिए हमें उस तरहके शब्द मिलने चाहियें। जो शब्द बोले गए थे वह उस समयकी भाषा वर्णणाका परिणमन था। वह परिणमन तो टला और अब यह दूसरा परिणमन आया तो सदृश होनेसे वाचकपना बन जाता है। इससे एकत्वकी बात नहीं।

सदृश शब्दसे अर्थप्रतिपत्ति होनेमें अभ्रांतत्व—शंकाकार कहता है कि देखो—सदृशतासे यदि अर्थका ज्ञान किया जाय तो सदृशतासे ज्ञान जो होगा वह भ्रान्त ज्ञान होगा क्योंकि जिससे संकेत ग्रहण नहीं किया गया ऐसे पदार्थोंमें अन्य शब्दोंसे अगर अर्थका ज्ञान किया जाता है तो वह अभ्रान्त नहीं कहला सकता। जैसे कि यह गाय शब्द बोलकर संकेत ग्रहण कराया गया कि यह गाय है तो कहीं उस गाय अर्थका बोध अश्व शब्दसे तो न बन बैठेगा। अश्व मायने घोड़ा, क्यों नहीं बनता कि गाय पदार्थसे सम्बन्ध है गाय शब्दका। गाय पदार्थसे सम्बन्ध घोड़ा शब्दका नहीं है। तो इसी तरह जैसे कि यह गाय शब्द घोड़ा शब्द भिन्न भिन्न शब्द हैं, जुदे जुदे हैं तो गाय शब्दसे जो बोध घोड़ा शब्दसे नहीं हो सकता। इसी तरह गाय गाय शब्द भी जितनी बार बोला जाय वे अगर न्यारे न्यारे शब्द हैं तो जिस गाय शब्दसे गाय अर्थका सम्बन्ध जाना था गाय शब्द तो वही एक मानते नहीं, अब तो नया शब्द आया तो नये शब्द अर्थका सम्बन्ध बनाया नहीं, तो नवीन गाय शब्दसे कोई अर्थ कैसे जाना जा सकता है और फिर भी जाना गया तो भ्रान्त हो जायगा। जैसे कि कोई घोड़ा शब्दसे गाय अर्थका सम्बन्ध जोड़ा तो वह भ्रान्त है। इसी प्रकार नवीन गाय शब्दसे जिससे कि सकेतका अभी ग्रहण नहीं किया गया और फिर उससे गाय शब्दका बोध करेगा तो वह भी भ्रान्त हुआ। उत्तरमें कहते हैं कि यह बात यों ठीक ठीक नहीं बैठी कि बहुत अवयवोंकी समतासे जब सम्बन्ध जुड़ता है तब होता है सादृश्य और वह शब्दोंमें सम्भव है, और उस सादृश्यसे चूंकि वैसे हीं अवयव नवीन थे, शब्दमें है तो वह शब्द भी उसके अर्थका बोध करा देता है। यह आशंका भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अयुक्त है वर्ण तो निरवयव होता है। वर्णोंमें अंश नही होते। वर्ण पुद्गलात्मक होते शब्द वर्णात्मक होते तो शब्दमें उस प्रकारका सादृश्य हो जाता है। अवयव है और अवयवोंका समूह है शब्द तो उसमें समानता आ जाती है।

वर्णादृश्यप्रत्यभिज्ञानसे अर्थवाचकताकी सिद्धि--शंकाकार कहता है कि वर्णोंमें जो समानता आयी तो समानताका अर्थ क्या है ? गत्व, कत्व आदिक तो यह सामान्य यदि गत्व वाचक है तो यही बात हमारे मतकी की गई कि वह सामान्य नित्य होता, गत्व भी नित्य होता और वह नित्य वाचक बना, इसीको हम इस शब्दमें कहते हैं कि नित्य शब्द अर्थवाचक होता है। यदि कहो कि ग आदिक व्यक्ति वाचक होते है शंकाकार कह रहा है, तो यह बतलावो कि ग आदिक व्यक्ति विशेष वाचक है या केवल ग आदिक व्यक्तिमात्र वाचक है, गत्व आदिक व्यक्ति विशेष वाचक नहीं, क्योंकि उस व्यक्तिका अनेक ग में अर्थ नहीं पाया जाता। और, व्यक्ति मात्रकी बात कहोगे तो वह व्यक्तिमात्र सामान्यके अन्त: प्रविष्ट है या व्यक्तिमें अन्तभूंत है। यदि सामान्यके अन्त: प्रविष्ट है तो यह बात आ गई कि सामान्य वाचक बना और वह है नित्य। यदि व्यक्तिमें अन्तभूंत बना तो उसका अन्वय नही पाया जाता। इससे शब्दको नित्य ही मानना चाहिये। क्योंकि शब्दको नित्य माने बिना शब्द अर्थका प्रतिपादक नहीं हो सकता जब शब्द नित्य हो तो उसके अर्थसे सम्बन्ध बनाया जाय। जिस शब्दको हमने पहिले जाना ही नहीं, देखा ही नहीं, जिस पदार्थ को हमने कभी देखा ही नहीं, उसका न सम्बन्ध बनता न उसमें वाच्यवाचकता आती, यदि अन्य ही शब्द पदार्थोंको बताने लगे तो कोई सा भी शब्द सबका वाचक बन सकता है और इस प्रकार सभी शब्द सबको प्रकाशित करदें यह बात कहना यों युक्त नही है कि ये शब्द शब्दसदृशतासे तो एकरूप जचते हैं पर इनकी उत्पत्ति है ये भिन्न देश कालमें पाये जाते हैं इस कारण ये न्यारे न्यारे वर्ण है और अनित्य हैं। तो इस तरह जो बात सुगम है, सीधी है, स्पष्ट हैं। वर्ण न्यारे न्यारे है। पैदा होते हैं। नष्ट होते हैं। उन शब्दोंमें जो पदार्थोंका सामर्थ्य है वह सदृशतासे एकत्वका निश्चय होनेपर प्रत्यभिज्ञा होनेपर अर्थको स्पष्ट कर जाते हैं।

शब्दकी अनेकता व अनित्यताको भ्रम बताते हुए नित्यता एकताके समर्थनकी शंका—शंकाकार कहता है कि अनेक जानने वाले लोग भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न-भिन्न शब्दोंको सुनते हैं इस कारण शब्द भिन्न भिन्न हो गए हैं यह बात युक्त नही है क्योंकि जैसे एक सूर्य है और भिन्न भिन्न देश वाले उस सूर्यको भिन्न भिन्न देशोंमें देख रहे हैं, उपलभ्यमान है, इस प्रकारसे जान रहे हैं तो भी सूर्य एक है। नाना नही हैं। नाना देशोंमें जो सूर्यकी उपलब्धि हो रही है सो भले ही हों किसी कारणसे, किन्तु सब जानते हैं कि सूर्य एक है। इसीं प्रकारसे विभिन्न देशोंमें शब्दों की उपलब्धि हो रही है तो भले हो उपलब्धि हो मगर शब्द एक है। यह जो भिन्न

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भिन्न देशोंमें शब्दकी उपलब्धि होती है वह व्यञ्जक ध्वनिके आधीन होनेसे होती है। कहीं शब्दके स्वरूपमें भेद पड़ा हो इस कारण नहीं होती। शब्दमें सभी वर्णोंमें नित्यपना है और व्यापकपना है यह बात बाधा रहित प्रमाणसे, प्रत्यभिज्ञानसे स्पष्ट जानी जाती है। जो जो शब्द ग्रहणमें आ रहे हैं सभी देशोंमें वे शब्द मौजूद हैं बराबर और एक हैं, क्योंकि इसके अवयव नहीं होते। वर्णके हिस्से नहीं हैं। देशके एक एक भागके रूपमें ये शब्द भिन्न भिन्न देशोंमें पाये जाते हैं। हां सब जगह शब्द हैं और इसी कारणसे वे भी सर्वात्मक हैं केवल व्यञ्जक ध्वनियोंके आधीन होनेके कारण उस देशमें ही शब्द ग्रहणमें आते हैं, क्योंकि ध्वनियोंमें यह सामर्थ्य नहीं है कि ध्वनियां सारे आकाशको व्याप सके इस कारण अविच्छिन्नरूपसे ये शब्द सर्वत्र ग्रहणमें नहीं आ रहे। ध्वनियाँ अलग अलग हैं, भिन्न भिन्न देशमें हैं और यह श्रुति शब्द श्रवण इसी कारणसे रुक रुककर होता है पर शब्दका स्वरूप देखो तो शब्द अनादि नित्य सर्वव्यापक है। सर्वत्र शब्दको प्रकट करने वाली जो वायु है। व्यञ्जक ध्वनियां हैं वे अन्य देशमें पायी जाती हैं। शब्द हैं सब जगह और शब्द प्रकट करने वाली ध्वनि अथवा व्यञ्जक वायु यह है एक जगह, सो एक जगह थोड़ी जगहमें शब्द सुनाई देता है सो यह बुद्धि लोगोंकी हो जाती है कि शब्द व्यापक नहीं है, पर सब अनुभव कर सकते हैं कि ऐसा लगता है कि जैसे शब्द दौड़ करके बड़े वेगसे आया हो और श्रोता उन उन बातोंसे ऐसा मानता है कि यह शब्द आया, पर शब्द आया पर शब्द नित्य हैं, सर्वत्र है, उसकी उत्पत्ति नहीं होती है। और जब शब्द नित्य हैं तो वेद और आगम शब्दोंसे भरे पड़े हैं। वे भी नित्य हैं और अपौरुषेय हैं।

शब्दके अनेकत्व व अनित्यत्वके निराकरणका निराकरण—उक्त शङ्का के समाधानमें इतनी बात समझ लेना चाहिए कि जो भी पदार्थ सत् होते हैं वे किसी न किसी अवस्थामें रहते हैं, अवस्थाशून्य नहीं होते। तो शब्द अवस्था है न कि पदार्थ, पदार्थ एकरूपमें शाश्वत रहने वाला है, पदार्थोंके स्वरूपमें आविर्भाव तिरोभाव इनका भी उत्पादव्यय नहीं देखा जाता, फिर सीधा उत्पादव्यय पदार्थोंमें होगा ही कैसे ? तो शब्द है अवस्था और अवस्था होती है किसी एकके आधारमें तो शब्दका आधार है भाषावर्गणा जातिके पुद्गल स्कंध। उनमें परस्परके संयोग वियोगसे व्यञ्जक ध्वनियां उत्पन्न होती हैं उन्हीं ध्वनियोंका नाम तो शब्द है। शब्द शब्दत्व सामान्यसे विशिष्ट है और तब उसमें पदार्थोंके प्रतिपादन करनेकी वाचन करनेकी सामर्थ्य है। यों शब्द उत्पन्न होता है, अनित्य है, अव्यापक है और जैसे गुणवान पुरुष या दोषवान पुरुष उन शब्दोंकी रचना करता है सो गुण और दोषके कारणसे उनमें प्रमाणता और अप्रमाणता व्यवस्थित की जाती है।

शब्दसे एकत्वकी सिद्धिमें बाधा—शङ्काकारने जो कहा था कि जो जो ग्रहीत शब्द हैं वे सभी देशमें विद्यमान हैं पर उनके अवयव नहीं हैं जिससे कि वे हिस्से

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हिस्सेके रूपसे रह सकें। शब्द है और वह सर्वात्मक है, व्यञ्जक ध्वनिके आधीन होने के कारण वे एक देशमें ही है शब्द ऐसा प्रतीत होता है। समाधान— उसमें जो कुछ हेतु बनाया है उसके पक्षमें अनुमानसे बाधा है वह किस तरह सो सुनिये ! गो शब्द अनेक हैं एक पुरुषके द्वारा एक समय भिन्न देश स्वभावरूपसे उपलभ्यमान होनेसे। अर्थात् गौ गौ आदि शब्द अनेक हैं क्योंकि एक ही पुरुष एक ही समय भिन्न-भिन्न देश में भिन्न रूपसे प्राप्त कर लेते हैं—घट आदिककी तरह। जैसे घट अनेक हैं। कैसे जाना ? यों कि एक ही पुरुष एक ही समयमें नाना देशोंमें स्थानोंमें घटको देखता है तो वह जानता है कि घट अनेक हैं। इसी प्रकाह बोलने वाले पचासों आदमी चारों तरफसे गौ गौ शब्द बोलते हैं तो उस उस देशमें वह वह शब्द उपलभ्यमान होता है— यह शब्द नित्यत्वके स्वप्नमें अनुमान बाधा बतायी जा रही है। अनुमान किया गया कि एकके द्वारा एक समय भिन्न देश स्वभावरूपसे उपलभ्यमान होनेसे तो इस हेतुसे शब्दकी अनेकता सिद्ध हो जाती है।

शब्दके अनेकत्वके समर्थक हेतुकी अव्यभिचारिताका विवरण—यहां कोई कहे कि जैसे सूर्य एक है और अनेक जानने वाले भिन्न भिन्न देशोंमें प्राप्त कर रहे हैं—अमेरिका वाले अमेरिकामें देखते हैं, भारत वाले भारतमें देखते हैं तो इससे व्यभिचार हेतुका आ जायगा यह बात भी नहीं कह सकते, क्योंकि सारे समय शब्द तो हैं एक पुरुषके द्वारा भिन्न भिन्न देशमें पाये जाने वाले, जो भारतमें एक पुरुष देख रहा है सूर्यको बस वह एक जगह देख रहा है। अन्य देशोंमें जो कोई देखता है वह वहांसे देख रहा है। एकने तो नहीं देखा कई स्थानोंसे। यहां हेतुमें एकेन व एकदा विशेषण दिया हुआ है। कोई कहे कि कोई एक पुरुष भिन्न भिन्न देशादिकरूपसे उप-लभ्यमान होता है तो उससे व्यभिचार हो गया अर्थात् एक देवदत्त नामका पुरुष कल किसी घरमें देखा था आज किसी घरमें देखा तो देवदत्त तो एक है और भिन्न भिन्न देशोंमें वह दीखा है तो उत्तर देते हैं कि इस हेतुमें एकत्व व एकदा विशेषण जोड़ा गया है, एक ही समयमें भिन्न भिन्न देशोंमें चीजें पाई जांय तो वे अनेक होती हैं। एक ही समयमें भिन्न भिन्न देशोंमें देखा किन्हीं चीजोंको तो वे अनेक हुआ करती है। अब यहां कोई शङ्का करता है कि एक ही आत्मा एक ही समयमें एकको देख रहा है, एक घड़ेको छू रहा है अथवा एक ही घड़को देखनेके रूपसे प्राप्त कर रहा है और स्प-र्शनके रूपसे प्राप्त कर रहा है तो ऐसे घट आदिकके साथ इस हेतुका व्यभिचार हो जायगा कि देखिये ! एक ही मनुष्य एक ही समयमें भिन्न भिन्न स्वभावसे घटादिक प्राप्त कर रहा है। उत्तर देते हैं कि हेतुमें भिन्न देश तथा भी विशेषण है अर्थात् भिन्न भिन्न देशोंमें दीखे तो अनेक हैं। एक ही घड़ेको कोई आंखोंसे देखकर रूप स्व-भावसे घटको प्राप्त कर रहा है और वही पुरुष उस ही घड़ेको छूकर स्पर्शन इन्द्रियसे जो जाना है उस रूपसे घटको प्राप्त कर रहा है तो घट तो एक है और भिन्न स्वभाव से जाना गया, किन्तु अनेक कहां रहा, यह दोष इस कारण नहीं दिया जा सकता कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हेतुमें भिन्न देशका विशेषण पड़ा हुआ है। वह एक घडा जिसको देखकर रूप स्वभाव से जान रहे हैं लेकिन भिन्न भिन्न स्थानोंमें तो नही जान रहे इस कारण ऐसे दर्शन और स्पर्शनके द्वारा स्वभावभेद पाये जाने वाले घट आदिकके साथ व्यभिचार नही।

शब्दके एकत्वकी सिद्धिमें जलपात्रस्थित सूर्यबिम्बका विरुद्ध दृष्टान्त और शब्दके अनेकत्वकी सिद्धि अब शङ्काकार कहता है कि देखो १० थालियाँ रखी हैं पानीसे भरी हुई धूपमें तो वहां १० जगह सूर्य दिख रहे हैं तो जलके थालोंमें संक्रान्त हुए अनित्यके प्रतिबिम्बोंसे इस हेतुका व्यभिचार किया जायगा अर्थात् हेतुकी सकल यों है कि एक पुरुषके द्वारा एक ही समयसे भिन्न देश रूपसे भिन्न स्वभावरूपसे जो चीज पायी जाय वह अनेक कहलाती है। तो यहां देखो—एक ही पुरुषने देखा, एक ही समय देखा और जितनी जगह थालियां रखी हैं उन भिन्न भिन्न देशोंमें देखा लेकिन सूर्य तो एक है तो इस हेतुमें व्यभिचार हो गया ना। उत्तरमें कहते हैं कि उन थालियोंमें सूर्य नही दीखा किन्तु प्रतिबिम्ब देखे। सूर्यका निमित्त पाकर उन थालियों का पानी सूर्य छायारूप परिणम गया। तो अब जो दीख रहा है वह थालीमें भरे हुए पानीकी चीज दीख रही है. सूर्य नही दीख रहा है तो इस तरह अब सूर्यमें भी व्यभिचार नही हुआ। अब प्रकरणपर आइये! शब्द एक पुरुषके द्वारा एक ही समयमें भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न-भिन्न स्वभावसे उपलभ्यमान हो रहा है इस कारण अनेक हैं शब्द, ऐसा अनुमानसे सिद्ध होनेपर भी और नित्य व्यापक सिद्ध करने वाले अनुमानमें बाधा आनेपर भी यदि व्यापकत्व नित्यत्व धर्म मान लोगे तो घट आदिकमें भी यह धर्म मान बैठो! जैसे कि तुम कहते हो कि वर्णके अवयव नही होते जिससे कि वर्ण कुछ कुछ अशोंमें रहा करे। जैसे घट रखा है पूराका पूरा इसी तरह वर्ण भी रहता है पूराका पूरा। और वह है सर्वात्मक। अब इसके समाधानमें कहते हैं कि देखो, कहीं तो लाल घड़ा है कहीं काला व कहीं पीला आदि। भिन्न भिन्न देशोंमें घट पाये जाते हैं इसलिये वे भिन्न हैं ऐसे ही शब्दकी भी भिन्न भिन्न देशोंमें प्राप्ति होती है और भिन्न भिन्न स्वभावसे कहीं शब्द उदात्त है कहीं अनुदात्त। कही अमिला हुआ है कहीं इमला हुआ है ऐसे ये शब्द भी भिन्न भिन्न प्रकारके पाये जाते हैं। सो वे अनेक हैं और साथ ही वे उत्पादव्यय होनेके कारण अनित्य हैं।

उदात्तादि धर्मोंकी आरोपितताकी मीमांसा—शंकाकार कहता है कि उदात्त अनुदात्त आदिक अकारादि वर्णोंके धर्म नहीं है व्यञ्जकोंके धर्म हैं। वर्ण तो पहिलेसे ही मौजूद हैं, सदा हैं, व्यापक हैं, उनको प्रकट करने वाली ध्वनि होती है तो ध्वनि स्थानमें जैसे भेद होता है वैसे ही उदात्त अनुदात्त आदिक भेद निकल बैठते हैं वे शब्दोंके धर्म नहीं है। वे वहां आरोप होनेसे धर्मकी तरह अभासमान होते हैं जैसे स्फटिक आदिक मणिमें जवाकुसुमकी लालिमा उपचरित होकर प्रतिभासमान होती है। वैसे ही बुद्धिकी तीव्रता और मंदता होनेपर महत्त्व और अल्पत्वकी कल्पना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जगती हैं। और, जैसे बड़े भारी तेजसे प्रकाशमान पदार्थमें बुद्धि कुशल निपुण बनती है। और मंद प्रकाशसे बुद्धि मंद बनती है इसी तरहसे समझना चाहिए कि प्रकाशमें उससे पहिले जैसे घट आदिक तो वे होके वे ही हैं एक प्रकाश भेदसे उनमें भेद आता है। यों ही शब्द तो वहीके वही हैं, नित्य हैं व्यापक हैं पर ध्वनिके धर्मभेदसे उन उन शब्दोंमें भी भेद प्रकट होता है। समाधान करते हैं कि यह बात सारहीन है। क्योंकि यदि उदात्त आदिक धर्मसे रहित आकार आदिक और उदात्त आदिकसे सहित ध्वनि लाल गैरलाल आदिक स्वभाव वाले जब कुसुम धर्मसे आरोपित स्फटिक छाया की तरह कहीं प्राप्त हो जाय तो यह कहा जा सकता है कि अन्यका धर्म अन्यमें आरोप करनेसे धर्मरूपसे प्रतिभासमान होता है। शंकाकारका यह कहना था कि जैसे स्फटिक मणिमें लालिमा तो नहीं है स्वच्छ है, पर लाल कपड़ाका अन्य कोई लाल चीज यदि उसके सामने हो तो वह स्फटिकमें प्रतिभासमान होती है। यह बात शब्दोंमें तब घटित की जा सके कि जैसे कहीं स्फटिक मणि अलग दिख जाती है और जवाकुसुम आदिक अलग दिखते हैं और फिर उनका सम्बन्ध होता है तो वहां प्रभावको आरोपित कह सकते हैं लेकिन उदात्त आदिक धर्मसे रहित अकार आदिक वर्ण और उत्तादिक सहित ध्वनि कहीं प्राप्त होवे तो कहा जा सकता है कि ये भेद शब्दके न थे, ये उपचरित होते हैं, पर यह बात तो स्वप्नमें भी नहीं पायी जाती। शब्द धर्मरूपसे प्रतिभासमान थे उदात्त आदिक यदि अन्यके मान लिए जायें तो फिर किसी भी पदार्थमें कुछ भी विश्वास करनेका अवकाश नहीं रह सकता।

उदात्तादिधर्मसहित प्रतीतिमें बाधाका अभाव—शब्दोंको नित्य व्यापक आदिक अनेक बातें सिद्ध करनेमें बाधकके अभावका हेतु दोगे कि हमारे माने हुए मन्तव्यका बाधक कोई हेतु नहीं है शंकाकारोंका कहा जा रहा है तो यह तो यहाँ भी समान है। शब्द अनेक हैं क्योंकि एक पुरुषके द्वारा एक समय भिन्न देश और भिन्न स्वभावरूपसे उपलभ्यमान हैं बाधक नाम है विपरीत दिखनेका। जो बात प्रसंगमें आयी है, प्रस्तुत की गई है उससे विपरीत अर्थका दर्शन करा दे कोई तो वह बाधक कहलाता है। जैसे कि दो चन्द्रमा दिखते हों किसीको तो उसका बाधक है एक चन्द्र का दिखना, पर यहाँ कोई ऐसा विपरीत दर्शक नहीं होता क्योंकि आकार आदिकमें हमेशा उदात्त आदिक धर्म प्रतीत होते रहते हैं। उदात्त आदिक धर्मको शब्दमें उपचरित तब कहा जा सके जब आधार छोड़कर स्वतन्त्र रहा करता हो, उनकी स्वतन्त्र सत्ता हो और शब्दोंकी स्वतन्त्र सत्ता हो। तो यह कह सकते हैं कि भिन्न शब्दोंमें उदात्त आदिक धर्मरूपसे ही प्रकट हुआ करता है। तो बाधा तो नहीं विपरीत दर्शन तो नहीं। शब्दोंमें जो कुछ भी ह्रस्व आदिक दीर्घ जो भी नजर आते हैं वे सदा उस रूप हैं। जो शब्द बोले जायें उनमें आत्म लाभके समय ही उदात्त और अनुदात्त आदिक रूप होना पाया जाता है। फिर भी उदात्त रहित शब्द बोलने लगेंगे कि शब्द तो प्यारे शब्द ही हैं। उनमें उदात्त और अनुदात्त धर्म नहीं हैं। वे तो व्यञ्जक ध्वनियों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

के भेदसे प्रकट हुए हैं। ऐसा माननेपर तो हम यहाँ भी यह कल्पना कर बैठेंगे कि घड़ा आदिक पदार्थ भी लाल पीले आदिक धर्मोंसे रहित दिखते हैं। तब घट आदिकमें यह लाल है, काला है, पीला है आदिक यह बोलका एक उपचार ही है। यदि कहो कि लाल काला आदिक धर्मोंसे रहित घट पट आदिक परिणाम ही नही हैं, वे जब हैं तो लाल नीला आदिक रूपको लिये हुए ही हैं। क्योंकि रक्त आदिक धर्म रहित घटका असत्त्व है। उत्तरमें कहते हैं कि इसी तरह शब्दमें भी उदात्त आदिक धर्मसे रहित शब्दका असत्त्व है। शब्द उदात्त रहित, ह्रस्वरहित, दीर्घरहित ये पाये जाते हों तो उनसे रहित मान बैठना चाहिये।

शब्दके अल्पत्व महत्त्व उदात्तत्व आदिक धर्ममें बुद्धिकी तीव्रता व मंदताकी अकारणता अब और देखिये ! शङ्काकारने जो यह कहा है कि बुद्धिकी तीव्रता और मंदतासे महत्त्व और अल्पत्व युक्त अर्थकी उपलब्धि होती है तो यह बतलावो कि महत्त्वरहित अर्थकी महत्त्वरूपसे उपलब्धि है या जिस प्रकारसे वह अवस्थित है उसकी अत्यन्त स्पष्टरूपसे उपलब्धि है यह भाव है। शङ्काकारके इस कथनपर कि शब्द तो एकरूप है, नित्य है, व्यापक है। शब्दमें भेद नही पड़ा हुआ है क्योंकि बुद्धि की जब तीव्रता होती है तो घट आदिक बड़े जचने लगते हैं। तो इसके निराकरणमें दो विकल्प किये गए हैं कि जब महत्त्वरहित घट प्रतिभासित हो रहा है तो महत्त्वसे युक्त रूपसे प्रतिभासित होता है याने उससे कुछ घड़ा बड़ा बन जाता है या जैसा घड़ा है वैसा ही है किन्तु वह अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है। यदि कहोगे कि बुद्धिकी तीव्रतासे महत्त्वरहित भी पदार्थ महान दिखता है तो फिर इस बुद्धिको भ्रान्त कहना चाहिए अर्थात् बड़ा तो है नही और उसे बड़ा देखते हैं। इसी प्रकार यह भी कहना कि बड़ा तेज तीव्र घट आदिकमें एक विशेषता, स्थिरता प्रकट होती है और मंद परिस्थितिमें मंदता प्रकट होती है। यह उदाहरण भी अयुक्त है। छोटा घड़ा कहीं महान नही प्रतिभात होता है। हां यह बात है कि शब्द उच्चारते हैं तो पदार्थ स्पष्टरूपसे प्रतिभासमान हो जायेंगे ? तो इसी प्रकार शब्द जैसे उच्चारित होते हैं वैसे ही प्रकट होंगे, वे कहीं व्यञ्जक ध्वनियोंके कारण हल्के हो जायें, बड़े हो जायें, भेद पड़ जाय सो बात नहीं है। बुद्धिकी तीव्रतासे पदार्थका महत्त्व जचता है, बुद्धिकी मंदतासे पदार्थ अल्प जचता है ऐसा प्रश्न किया जानेपर उत्तर दिया जा रहा है कि यह भी नहीं होता। बहुत बड़े उजेलेमें चीज एकदम साफ नजर आयगी पर छोटेका बड़ा नजर आये यह बात नहीं होती। तो महत्त्वरहित पदार्थका महत्त्वके द्वारा उपलम्भ होनेका नाम बुद्धिकी तीव्रता है यह बात तो घटित नही होती, यदि दूसरा पक्ष लोगे कि महत्त्व आदिक धर्म रहितका पदार्थका स्पष्टरूपसे ग्रहण होनेका ही नाम बुद्धिकी तीव्रता है और ऐसा होनेपर व्यञ्जक ध्वनियोंके धर्मका अनुविधान करना भी सिद्ध नही होता। अर्थात् बुद्धि तीव्र हो जायगी तो पदार्थ स्पष्ट विदित हो जायगा पर यह न छोटा और बड़ा नजर आने लगे। इस तरह बुद्धिके मंद होने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पर पदार्थमें अल्पता आती है। यहां कहते हैं कि यह शंका खण्डित हो जाती है। बुद्धि मंद हो गई तो पदार्थ जरा कम जचने लगे, उनके ज्ञानको कठिन कहने लगे किन्तु कितने ही स्पष्टरूपसे पदार्थका ज्ञान होता। ज्ञाता पुरुष पदार्थको उतना ही उतना देख पाता है। ऐसा नही है कि मंदतेजसे प्रकाशमान हुए घट आदिक छोटे दीखें और तेज प्रकाशमें प्रकाशमान घट आदिक बड़ा दीखे। इस कारण यह मानना चाहिये कि बड़े तालू आदिकके व्यापार होनेपर महत्त्व आदिक धर्मोंसे सहित शब्दोंकी उत्पत्ति होती है और अल्प तालु आदिकके व्यापार होनेपर अल्पत्व आदिक धर्मसे सहित शब्द ही उत्पन्न होते हैं।

तात्वादिकोंकी व्यञ्जकता व शब्दोंकी व्यञ्जकतापर मीमांसा और भी सुनिये! यदि तालु आदिक ध्वनियां शब्दकी व्यञ्जन बने तो तालु आदिकके व्यापार होनेपर महत्त्व अल्पत्व आदिक धर्मसे सहित शब्दकी नियमसे उपलब्ध न होगी, क्योंकि यह तो कारकोंका व्यापार है कि अपनी उपस्थितिमें नियमसे कार्यको बनाये। यह व्यञ्जकोंका व्यापार नही है। तात्पर्य यह है कि जैसे घट रखे हुए हैं और उनपर कपड़ा डाल दिया तो कपड़ा उघाड़नेसे कही वह घड़ा बड़ा या छोटा न बन जायगा। जो है सो ही व्यक्त होगा। छोटा बड़ा होना तो कारण कार्यमें बनता है। व्यञ्जक और व्यंग्यमें नही बनता। यह व्यञ्जकोंका व्यापार नही है कि किसी शब्दको छोटा करदे और किसीको बड़ा करदे, यह भी नही है कि जो व्यञ्जक है वह जहां हो वहां व्यंग्य अवश्य हो। जैसे दीपक तो है व्यञ्जक अर्थात् पदार्थोंको प्रकट करने वाला और पदार्थ है व्यंग्य अर्थात् प्रकट होने योग्य। तो क्या कहीं ऐसा देखा है किसीने कि दीपक जलाया तो वहाँ घड़े आदिक जरूर आने चाहियें? अरे होंगे तो प्रकाशमें आयेंगे न होंगे तो प्रदीपके जलनेपर भी घट आदिक प्रकाशमें नही आ सकते। जैसे व्यञ्जक प्रदीप आदिक जहां जहां हैं वहां वहां व्यंग्य घट आदिकका सन्निधि हो, उपलब्धि हो, यह नियम नही है। अन्यथा अर्थात् प्रदीप आदिकके होनेपर घट आदिककी उपलब्धि हो जाय तो फिर उसमें कोई विशेषता नही रही, फिर उत्पन्न करना भी व्यर्थ है, कुम्हार चक्र आदिकका व्यापार भी व्यर्थ है क्योंकि अब तो यह नियम बना दिया कि जहां व्यञ्जक होता है वहां व्यंग नियमसे होता है। दीपक हैं घट पट आदिक पदार्थों के व्यञ्जक प्रकाशमान करने वाले, तो जहां जहां दीपक होंगे वहां वहां पर घटआदिक अपने आप ही आ जायेंगे। फिर घट पटका भेद करनेको क्या जरूरत है? फिर चक्र कुम्हार, जुलाहा, कुविन्द आदिककी आवश्यकता हो क्यों रहे?

शब्दोंकी कार्यरूपताके विरोधमें शङ्का व समाधान —शङ्काकार कहता है कि घट आदिक पदार्थ तो सर्वगत हैं नहीं, वे जितने बड़े हैं उतनी जगहमें ही रहते हैं इसलिए घट आदिकको व्यञ्जन करने वाले, प्रकाशित करने व ले प्रदीप आदिकका सन्निधान भी हो तो भी सब जगह घट पट आदिक उपलब्ध होना चाहिये। यह बात

http://sahjanandvarnishastra.org/

न बनेगी। किन्तु शब्दमें यह बात सम्भव है क्योंकि शब्द है सर्वव्यापक। जब सर्वत्र शब्द पड़ा हुआ है और कहीं व्यञ्जक तालु आदिक व्यापार ध्वनियां बन गयी हैं तो वहाँ शब्द व्यंग्य हो ही जाता है। उत्तरमें कहते हैं कि यह भी कथन बिना विचारे है शब्द सर्वगत है ही नहीं। अपनी कल्पनामें कोई कुछ मान ले इससे वह प्रमाण तो नही हो जाता। शब्द सर्वगत नही है, क्योंकि सामान्य विशेषवान होनेपर बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष होनेसे। जैसे घट पट आदिक पदार्थ ये सामान्य विशेष वाले हैं और बाहरमें एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष होते हैं। जैसे आंखोंसे देखा घड़ा तो मालूम होता है कि यह सर्वव्यापक नही है। तो यही बात शब्दमें पाई जाती है। शब्द भी सामान्य विशेष वाला है इसलिए शब्दको अगर व्यंग्य मानते हो तो घट आदिकको भी व्यंग्य मान लो। और यदि घट आदिकको व्यंग्य नही मानते, कार्य मानते हो तो शब्दको भी कार्य मानो। जब हेतु दोनोंमें एक समान रूपसे रहता है घट भी सामान्य विशेषवान है और बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्षभूत है तो शब्द भी सामान्य विशेषवान है और बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्षभूत है। कर्ण–इन्द्रियके द्वारा शब्दका परिज्ञान होता है, इस कारण जैसे कुम्हार चक्र आदिकके व्यापारसे घटकी उत्पत्ति होती है इसी प्रकार कंठ तालू आदिकके व्यापार होनेपर शब्दकी उत्पत्ति होती है। यों शब्द नित्य नही, व्यापक नही और शब्दोंसे भरा पूरा जो आगम है उसकी प्रमाणता उसमें वक्ता की प्रमाणतासे आया करती है।

श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा ग्राह्य होनेसे ध्वनिमें व शब्दमें अनर्थान्तरता—यह प्रकरण चल रहा है आगम प्रमाणका। आगम भी प्रमाण है। इसका लक्षण बताया गया कि आप्त सर्वज्ञदेवके वचन आदिकके निमित्तसे जो पदार्थोंका ज्ञान होता है उसे आगम कहते हैं। इस प्रसंगमें वेदसिद्धान्त वालोंने शंका रखी थी कि यह लक्षण सही नही है क्योंकि सर्वज्ञ कोई है ही नहीं, फिर सर्वज्ञके वचनसे शब्द आये और प्रमाण हुए यह कैसे होगा। साथ ही यह बतावो कि वेदवाक्य ही प्रमाण है क्योंकि वह अपौरुषेय है। किसी पुरुषके द्वारा बनाया नही गया है। इसके समर्थनमें यह भी कहा कि शब्द नित्य होता है और वे नित्य शब्द ही वेदमें हैं अतएव वे प्रत्येक अर्थ बताते हैं और प्रमाणभूत हैं। तो यहां शब्दके नित्यत्वके बारेमें चर्चायें चल उठीं। शब्द नित्य नही हैं क्योंकि वह उत्पन्न होता है और नष्ट होता है। कहते हैं कि शब्द तो सदा रहते हैं, शब्द नही उत्पन्न हुआ करते। इन शब्दोंका आविर्भाव होता है। जैसे घट आदिक पदार्थ पड़ा हो और उसके ऊपर कोई आवरण पड़ा हो तो आवरण हटनेसे घटपट आदिक पदार्थोंका आविर्भाव हो जाता है। इसमें भी बहुत आपत्ति आयी, क्योंकि शब्द हो और उनका आविर्भाव हो तो आविर्भाव कैसे हुआ? ध्वनियोंमें तालू कठ आदिकसे शब्दका आविर्भाव माना है जिससे कि उत्पत्ति मानी गई है। उन स्थानोंसे शब्दोंका प्राविर्भाव माना है शंकाकारने तो उन ध्वनियोंके सम्बंध में पूछा जा रहा है कि वे ध्वनियां श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा ग्रहणमें आती हैं या नहीं?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शंकाकार कहता है कि ध्वनि और शब्द ये दो अलग अलग चीज रहें। ध्वनि तो उत्पन्न होती हैं किन्तु शब्द नित्य है वह उत्पन्न नहीं होता। तो वे ध्वनियां क्या चीज हैं सो पूछा जा रहा है। वैसे लोकरुढ़िमें ध्वनि भी शब्द कहलाती है। जैसे मेघकी ध्वनि हो, भगवानकी ध्वनि हो तो ध्वनि मायने ही शब्द है। शंकाकार चाहता है कि ध्वनि कुछ और कहलाये, शब्द कुछ और कहलाये। तो उस ही ध्वनिके सम्बन्धमें पूछा जा रहा है कि वे ध्वनियां श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा ग्रहणमें आती हैं अथवा नहीं ? यदि कहो कि श्रोत्र इन्द्रिय द्वारा साध्य हैं वे ध्वनियाँ तो इस ही कारण वे शब्द कहलाते हैं। ध्वनियां शब्द ही है। ध्वनि तो बन जाय व्यञ्जक और शब्द रहे व्यंग्य अर्थात् शब्द तो पहिलेसे बने हुए हैं। उनका तो होता है आविर्भाव और ध्वनियाँ उत्पन्न की जाती है, उन ध्वनियोंके आविर्भाव होता है क्योंकि शब्दका, लक्षण यही है कि जो श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा ग्रहणमें आये। अब व्यक्तियोंको श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा ग्राह्य माना है तो ध्वनियाँ शब्द नहीं हैं।

उदात्तादिकोंकी शब्दधर्मतापर विचार – शंकाकारके समक्ष जब शब्दोंके भेद सामने आये कि शब्दमें तो अनेक भेद पड़े हैं—कोई ह्रस्व कोई दीर्घ। कोई उदात्त कोई अनुदात्त। जो शब्द ऊंचे स्थानसे बोले जायें सो उदात्त हैं और जो नीचे स्थान करके बोले जायें सो अनुदात्त हैं। तो उदात्त अनुदात्त आदिक शब्दोंके धर्म कहे गए थे और जिनका विविधता हो वह अनित्य होता है। अनेक होता है तो इस समय शंकाकारने यह कहा था कि उदात्त ह्रस्व दीर्घ ये सब भेद ध्वनियोंके हैं शब्दके नहीं शब्द तो एक है, नित्य है। सर्वव्यापी हैं। ध्वनियां नाना हैं। तो अब श्रोत्र इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य ध्वनियाँ हो गयी जिससे कि ध्वनिक शब्द कहलाने लगे तब फिर उदात्त आदिक भेद तात्विक कहलाये। ऐसा नहीं कि उदात्त आदिक धर्म शब्दके वास्तविक नहीं हैं, हैं किसीके और उनका उपचार शब्दोमें किया गया। ऐसी बात नहीं किन्तु शब्दके ही धर्म उदात्त ह्रस्व दीर्घ आदिक हैं। उन्हें चाहे ध्वनि शब्दसे कहो चाहे शब्द शब्दसे कह उन ध्वनियोंसे अतिरिक्त शब्दकी कल्पना करना व्यर्थ है ? चाहे ध्वनि कहलो, चाहे शब्द कह लो यह वह पदार्थ है जो श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा ग्रहणमें आता है। यदि कहो कि ये ध्वनियां श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा ग्रहणमें नहीं आती तब फिर उन ध्वनियोंके धर्म जो उदात्त अनुदात्त ह्रस्व दीर्घ आदिक आया है वह श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा कैसे ग्राह्य होगा। शंकाकार यहां दो बातें मान रहा है ना—ध्वनियां और शब्द। और उदात्त अनुदात्त ह्रस्व दीर्घ आदिक जो भेद हैं वे ध्वनियोंके माने हैं शंकाकार उन भेदोंको शब्दोंमें नहीं मानता क्योंकि शब्दोंमें नहीं मानता क्योंकि शब्दोंमें भेद मानने लगे तो शब्द अनित्य हो जायगा। नाना हो जायेंगे, सर्व व्यापक भी न रहेंगे। इस कारण उदात्त आदिक धर्म ध्वनिके माने गए हैं। तो अब जब ध्वनि श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा ग्राह्य नहीं हैं यह मिथ्या विकल्प माना जा रहा है तो फिर उदात्त धर्म श्रोत्र इन्द्रिय द्वारा ग्रहणमें कैसे आ सकता है? कहीं ऐसा नहीं होता कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रूपादिकके धर्म तो चमक आदिक हैं तो रूप तो ग्रहणमें नही आये और चमक ग्रहण में आ जाय अथवा रूपका चमक आदिक श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा ग्रहणमें आ जायें ऐसा तो नही होता। तो इसी तरह भी नही हो सकता कि ध्वनियां गायने हैं उदात्त आदिक सो ध्वनि तो श्रोत्र इन्द्रियसे ग्रहणमें नही आये और उदात्त आदिक ग्रहणमें नही आ जायें। और जबरदस्ती मानोगे भी कि उदात्त आदिक श्रोत्र इन्द्रियसे ग्रहणमें आ गये तो उनको शब्दका धर्म मानना पड़ेगा अथवा किसी भी इन्द्रियके द्वारा उदात्त आदिक ग्रहणमें आ जायें यों मानना पड़ेगा।

उदात्तह्रस्वादिकी शब्दधर्मता माननेमें ही वास्तविकता – शङ्काकार कहता है कि उदत्त आदिक जो ग्रहणमें आते हैं, छोटे बड़े अक्षर शब्द जो ग्रहणमें आते हैं तो वे वास्तवमें ग्रहणमें नही आते किन्तु आरोपसे आते हैं याने उदत्त अनुदात्त स्वर ह्रस्व दीर्घ ऐसे जो वर्ण भेद हैं, वे जो ग्रहणमें आ रहे हैं सो सीधे ग्रहणमें नही आते किन्तु आरोपसे आते हैं। तो उनसे पूछा है कि अग्रहीतको आरोप कैसे हो जायगा ? जब उदात्त आदिक धर्म ग्रहणमें न आ सके तो उनका आरोप कैसे बनेगा ? ध्वनियोंके धर्म हैं और शब्दोंमें आरोप होता है। यदि अग्रहीतका भी आरोप बनने लगे तो रूपका जो भासुरता आदिक धर्म है उसका भी शब्दमें किसी भी चीजमें आरोप करलें। बिना ग्रहण किए हुए धर्मका आरोप अगर होने लगे तो रूपके चमकका आरोप भी शब्दमें कर डालें क्योंकि आरोप तो बिना ग्रहण किये भी हो जाया करता है। शंकाकार कहता है कि ध्वनियाँ हैं व्यञ्जक, इस कारण ध्वनियोंके वे धर्म ही शब्दमें आरोपित होते हैं। छोटा बड़ा होना यह तो ध्वनियोंका धर्म है और उसका आरोप शब्दोंसे होता है। आशयमें यह बात पड़ी है कि तालु कंठ आदिक ये कहलाते हैं ध्वनियाँ और इसमें तो छोटा बड़ापन आदि भेद बने हुए हैं। जब ध्वनियोंसे प्रकट होते हैं शब्द तो छोटा बड़ापन जो ध्वनियोंके धर्म हैं उनका आरोप शब्दोंमें किया जाता है। तो व्यगता होनेसे ध्वनियोंके ये धर्म शब्दमें आरोपित नही हु सकते क्यों कि रूपादिक शब्द व्यञ्जक नही है। जो शब्दके व्यञ्जक है उनका ही धर्म शब्दमें आरोपित हो सकता है पर रूपादिकके धर्म शब्दमें इस कारण आरोपित नही होते कि रूपादिक तो शब्दके व्यञ्जक नही है 'रूपसे शब्द नही प्रकट होता' उत्तर देते हैं कि भाई व्यञ्जकपनेका अर्थ है क्या ? यही ना कि ज्ञान उत्पन्न करदे। ये तालू कंठ आदिक शब्दके व्यञ्जक हैं अर्थात् ये शब्दके ज्ञानको उत्पन्न कर देते हैं। तो ज्ञानको उत्पन्न करनेसे अतिरिक्त व्यञ्जकपना और कुछ नही है, तब फिर यह प्रसंग आयगा कि आँख तो है छोटी सी और उसके द्वारा व्याप्त हुआ यह पर्वत, सो महान होनेपर भी चूँकि इस पर्वतका व्यञ्जक है आँख आँख है छोटी तो आँखका जो अल्पत्व धर्म है वह पर्वत में लग बैठेगा, पर्वत छोटा प्रतीत होने लगेगा और सरसों बहुत बड़े प्रमाण वाले प्रतीत होने लगेंगे पर ऐसा तो नही है इस कारण उदात्त आदिक ध्वनियोंके धर्म हैं यह बात ठीक नही किन्तु वे शब्दके ही धर्म हैं। छोटा शब्द बड़ा शब्द ये सब शब्दके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

धर्म हैं तो भी यदि शब्दको एक व्यक्ति ही मानोगे तो फिर घट आदिकमें भी धर्म छोटा बड़ा काला पीला आदिक अनेक हैं तो घट आदिकके धर्म भी आरोपित हो जावेंगे। तो इस तरह घट आदिक भी एक व्यक्ति हो जायगा। घट बना है यह बात फिर सिद्ध नहीं हो सकती।

शब्दके अल्पत्व महत्त्वका प्रतिपादन—शङ्काकार कहता है कि शब्द तो एक है इसलिये आकाशकी तरह कारणके आधीन नहीं है। शब्द किसी कारणसे उत्पन्न नहीं होता। शब्द कार्य नहीं है, शब्द तो नित्य है। जैसे आकाश नित्य है। आकाशका धर्म शब्द है आकाश जैसे नित्य है तो वह किसी कारणके आधीन नहीं है, तब आकाशमें न उत्कर्ष है न उपकर्ष है। इसी प्रकार शब्द भी जब एक है तो उसमें न उत्कर्ष है न अपकर्ष है, लेकिन घटको यदि एक मान लोगे तो जो एक होता है वह कारणके आधीन नहीं होता। तब फिर घटमें छोटा बड़ापन न होना चाहिये। उत्तर में कहते हैं कि यह तो शब्दमें भी समान है। शब्द भी यदि प्रत्येक एक एक व्यक्तिरूप है तो तालु आदिकमें उत्कर्ष अथवा उपकर्ष होनेसे शब्दमें उत्कर्ष अथवा अपकर्ष न आना चाहिये, किन्तु सभी शब्दोंमें एक समान ज्ञान रहना चाहिये। शङ्काकार कहता है कि तालु आदिकके बड़े होनेसे शब्दका बड़ापन होता है, यह बात असिद्ध है क्योंकि वर्ण न बढ़ता है, न घटता है। अल्प होना, महान होना यह कारणसे सम्बन्ध रखा करता है। जैसा कारण होता है वैसा अल्प और महान कार्य बना करता है, पर वर्ण तो अवयव रहित है उसमें वृद्धि और ह्रास नहीं हुआ करता। समाधानमें कहते हैं कि अल्पपना और बड़ापनाके कारणका अनुविधान होना यह बात जो असिद्ध बतला रहे सो क्यों बतला रहे? क्या अल्पत्व महत्व स्वभावसिद्ध होनेसे असिद्ध है इस कारण बतला रहे हो या कारणके अल्प व महान होनेसे शब्दमें अल्पत्व और महत्व ही नहीं होता क्योंकि वहाँ स्वभावसे ही अल्पपना महत्वपना नहीं है। यहाँ शङ्काकार से दो विकल्प किए गए कि जो यह बताया है कि अल्पत्व और महत्वका कारणके अनुसार होना यह बात असिद्ध है। तो असिद्ध क्यों है स्वभावसे या कारणके अल्प महान होनेसे शब्द का अल्पत्व और महत्त्व नहीं होता क्योंकि स्वभावमें अल्पता और महत्ता नहीं है, इनमेंसे यह विकल्प कि स्वभावमें से ही अल्पत्व और महत्त्व पड़ा हुआ है सो ठीक है। सो शब्दके स्वभावमें ही अल्पत्व महत्त्व आ गया परन्तु वह उसके कारणके अल्प होनेसे और महान होनेसे किया गया यह बात नहीं आयी और इस तरहसे फिर घट पट आदिकमें भी उसी प्रकार स्वभावसे अल्पत्व और महत्त्वका प्रसंग भी आ जायगा। यदि कहो कि कारणके छोटे बड़े होनेसे शब्दका छोटा बड़ापन ही नहीं हुवा करता क्योंकि शब्दमें छोटा बड़ापन है ही नहीं। तो कहते कि यह बात तो प्रतीतिके विरुद्ध है। शब्दमें छोटा बड़ापन तो सब लोग समझते ही हैं। कैसे कह सकें कि शब्दमें छोटा बड़ापन नहीं हुआ करता। महान तालु आदिक होनेपर महान शब्द प्रतीत होता है और तालु आदिकका अल्प व्यापार होनेपर शब्द भी अल्प प्रतीत होता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। जब कभी कोई धीरे-धीरे बात करता है गुप्त बात करता है तो वहाँ तालु आदिक का व्यापार ही तो हीन हो रहा और इस तरह अगर कारणके अल्प महान होनेको कार्यमें अल्पता महत्ता न मानोगे तो फिर लोकमें किसी भी विषयमें अल्पत्व महत्त्वका कोई विश्व स न किया जा सकेगा।

कारणके अल्पत्व महत्त्वसे भी कार्यके अल्पत्व व महत्त्वकी निष्पत्ति—अब और बात सुनिये जो यह कहा कि वर्ण बढ़ता नही है तो इसका अर्थ क्या मानते हो तुम ? क्या छोटे तालू आदिकसे उत्पन्न हुए वर्ण जो कि अल्प रूपसे बताया हुआ है वह महान तालू आदिकके व्यापारसे नही बढ़ता यह कहना है क्या ? तो यह तो सिद्ध साधन है अर्थात् ओंठ कठ आदिक यदि कोमल चलाया जायगा अल्प चलाया जायगा तो शब्द अल्प प्रकट होंगे और ये तालु आदिक ये विशेष चलाये जायेंगे तो विशेष व्यापारसे दीर्घ आदिक हो जायेंगे। घट जैसे छोटे मृत्पिण्डसे बनाया जाता है तो बनता ही है बड़ा। यह बात तो वहाँ भी है कि छोटी मिट्टीसे बनाया गया जो घट है वह अन्यसे बढ़ता नही है क्योंकि छोटे मृतपिण्डसे बनाये गए अल्प घट किसी अन्य से बढ़ने लगें तो या वह घट नही रहा या अन्य घट बन गया। यदि कहो कि दूसरा भी बढ़ा हुआ उत्पन्न नही होता तो यह बात नही है। थोड़े मृतपिण्डसे जो घड़ा बनाया जायगा वह छोटा बनेगा। बड़े मृतपिण्डसे जो घड़ा बनाया जायगा वह बड़ा बनेगा। यह बात बराबर देखी जा रही है और देखी हुई बातको टाला नही जा सकता है।

शब्दोंमें संकेतकी निष्पत्ति—अब प्रश्न यह रहा कि शब्द तो छोटे बड़े हो गए पर नये-नये शब्द जब उत्पन्न हो रहे हैं तो उन शब्दोंसे संकेत कैसे बनेगा। पुराना शब्द हो, वही शब्द हो उसमें तो संकेत बन जायगा। जैसे एक यह चौकी है १० वर्षसे है तो इस चौकीमें संकेत बना हुआ है, और नित्य, रहती है तो उसका संकेत बन सकता है। स्वरूपपर दृष्टि डालनेके ही साथ नष्ट हों दोनों तो फिर शब्दमें अर्थको समझानेका संकेत कैसे बन सकता है ? तो उसकी बात यहाँ समाधानमें कह रहे हैं कि भाई सामान्यसे यह संकेत बनता है जो घट शब्द आज बोला है यही घट शब्द पहिले भी बोला गया था और संकेत किया गया था कि घट शब्द बोलनेसे यह निर्णय बनाना चाहिये कि अब उस ही शब्दके समान आज घट बोला गया है तो सादृश्यके परिणाम वाले शब्दोंसे संकेत बन जाता है और सामान्य व्यक्तिसे रहा करता है तो व्यक्तिकी सदृशता व्यक्तिके अनुसार भाव भी रहा करते हैं। तो इस तरह वर्ण वाले अल्पत्व और महत्वसे भी सब संकेत बन जाते हैं पर आपका जो कर्तृत्व सामान्य है वह सामान्य तो कुछ है ही नही। सामान्य वेदाकार कभी नित्य है व्यापक है और व्यक्तियोंने भी नित्यपना जाना वह एक स्वतंत्र पदार्थ है, तो ऐसा सामान्यस्वरूप जो व्यक्तिसम्मत नही है वह तो कहते हैं कि असत् है, उससे ध्वनियाँ कैसे होजायेंगी? तो इससे सीधा यह मानना चाहिये कि तालु कंठ आदिकके व्यापारसे शब्दकी उत्पत्ति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होती है और जैसे स्थानका प्रयोग होता है उस ही प्रकार शब्द बना करते हैं। जैसे कंठपर जोर देकर जो ध्वनित किया जाता है तो क ख ग आदिक शब्द बनते हैं। तालूपर जोर देकर शब्द निकलते हैं तो ई च छ ज आदिक स्वर निकलते है। मूर्धापर जोर देकर जो शब्द उत्पन्न होते हैं वे ट ठ ड आदिक हैं। तो जैसा कारण होता है वैसा कार्य होता है इससे भी यह सिद्ध है कि शब्द कारणसे उत्पन्न होते हैं और ह्रस्व दीर्घ उदात्त अनुदात्त आदिक भाव उत्पन्न हुए शब्दमें हैं। तो शब्द कृतक है। शब्दमें प्रमाणता गुणवान वक्तासे आती है। दोषवान् शब्दको बोले तो वह अप्रमाण है। तो आगमकी प्रमाणता सिद्ध करनेके लिये कोई न कोई वक्ताकी खोज करिये।

अभिव्यञ्जकके धर्मका व्यंग्यमें आरोप करनेका प्रयास और परिहार

शङ्काकार कहता है कि दर्पणमें मुख देखनेसे मुख तो जैसा है तैसा ही है इस दर्पणमें कोई लम्बा चौड़ा नाना प्रकारका दिखता है। चमकती हुई तलवारमें मुख देखनेसे मुख लम्बा प्रतीत होता है तो जैसा मुख अपने आपमे जैसा है तैसा ही है लेकिन उसका जो अभिव्यञ्जक दर्पण आदिक है उनके धर्मके अनुसार मुखका भी आकार बन जाता है, इसी प्रकार शब्द तो अपनेमें जैसा है सो ही है। नित्य है, एक ही सर्वव्यापक है किन्तु उनकी अभिव्यञ्जक जो ध्वनियां हैं तालू कठ आदिक उनके भेदसे शब्दोंमें उदात्त ह्रस्व आदिक भेद प्रतीत होने लगता है। समाधानमें कहते हैं कि यह बात युक्त नहीं है क्योंकि भ्रान्त दृष्टान्तसे अभ्रान्तमे व्यभिचार नही लगाया जा सकता। शब्दमें यह महान है ह्रस्व है, दीर्घ है, उदात्त है आदिक जो धर्म हैं, इसका जो ज्ञान हो रहा है वे तो अभ्रान्त हैं, उनमें किसी भी प्रकारका भ्रम नही है। स्पष्ट श्रवण इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष होता है। उनमें किसी भी प्रकारकी बाधा नहीं रहती है। पर मुखमें उस महान छोटे लम्बे आदिक आकारका जो बोध होता है वह भ्रान्त है, क्योंकि उनमें बाधा पायी जाती है। लम्बी तलवारमें देखा तो लम्बा मुख दीखा। गोल दर्पणमें देखा तो विशाल दीखा। तो उनमें तो बाधायें पायी जाती हैं। दूसरे स्वयं भी मुखको टटोलकर देख सकते हैं, पर शब्दमें तो भ्रान्ति है नहीं। जिस प्रकार का शब्द बोला उसी प्रकारका लोग सुनते हैं। दीर्घ शब्द बोला जाय तो उसमे दो मात्रायें होती हैं और वे वैसी ही प्रतिभात होती हैं तो अन्यके भ्रान्त होनेपर भी अन्य को भ्रान्त नही माना जा सकता। यदि एकका भ्रम होनेसे दूसरेमें भी भ्रम जोड़ दिया जाय तो सकल शून्य हो जायगा। जैसे स्वप्नमें होने वाला जो ज्ञान है वह भ्रांत है ना। तो स्वप्नमें होने वाले ज्ञानमें भ्रान्त होनेसे फिर समस्त ज्ञानोंमें भ्रान्ति ला दो जायगी। और फिर तलवारमें जो मुखकी छाया पड़ी तो लम्बा प्रतिबिम्ब बना। तो वहां मुख लम्बे रूपसे नही आया या दर्पणमें मुख गोलरूपसे दीखा तो कहीं इस प्रकारका गोल मटोलपना मुखमें नही है। या नीले कांचमें नीला प्रतिबिम्ब दीखा तो कहीं मुख नीलरूप नही प्रतिभात होता। किन्तु वहां दर्पण आदिकमें उन का ही आकार प्रतिबिम्बित होता है, सो दर्पणके धर्मका अनुकरण करने वाला वह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रतिबिम्ब प्रतिभात हो रहा है। यह बात स्पष्टरूपसे लोगोंको विदित होती है। तलवार लम्बी है, उसका आकार उसकी झलक लम्बी है अतएव वहाँ जो प्रतिबिम्ब किया गया वह लम्बेरूपसे किया गया, पर लम्बे रूपसे प्रतिबिम्ब आनेपर जिसका प्रतिबिम्ब आया है वह लम्बा हो जायगा यह बात युक्त नही बैठती।

मूर्तका ही मूर्तमें प्रतिबिम्बत होनेके नियमसे अभिव्यञ्जककी छाया का शब्दमें होनेकी अनुपपत्ति — यहाँ ऐसा नही है कि शब्दका आकार ध्वनिमें आया हो या ध्वनिका प्रतिबिम्ब शब्दमें आया हो और इस कारणसे ध्वनिके धर्मका अनुकरण करने वाला शब्द बन जाय यह बात नही कही जा सकती, क्योंकि शब्द तो अमूर्त माना गया है शंकाकारके सिद्धान्तमें. क्योंकि शब्दको शंकाकारने आकाशका गुण समझा है। आकाश है अमूर्त तो अमूर्त आकाशका जो गुण होगा वह भी अमूर्त होगा। तो अमूर्त शब्दका मूर्तिक ध्वनिमें प्रतिबिम्बत हो ही नही सकता। ध्वनियां हैं मूर्त। तालु कंठ मूर्धा आदिक ध्वनियाँ हैं और वे हैं मूर्त। उनमें शब्दका प्रतिबिम्बन नही बन सकता, क्योंकि शब्द मूर्त हैं। मूर्त ही मुख आदिकका दर्पणमें प्रतिबिम्ब होना देखा गया है। कहीं अमूर्त आत्माका भी दर्पणमें प्रतिबिम्ब आ सकता है क्या ? अमूर्त आकाश आदिकका दर्पणमें प्रतिबिम्ब आ सकता है क्या ? मूर्तमें मूर्तका ही प्रतिबिम्ब हुआ करता है। और भी देखिये ध्वनिके सम्बन्धमें पूछा गया था कि ध्वनि स्रोत्र ग्राह्य है अथवा नही ? अर्थात् कर्ण इन्द्रियसे ध्वनिका ग्रहण होता है तो अब तक ये समस्त दोष बताये गए। इसलिये स्रोत्र ग्राह्य माननेपर ध्वनि और शब्द दोनों एक चीज बन गयी। ध्वनिसे अतिरिक्त शब्द और कुछ नही है। अब दूसरे विकल्पसे मानोगे कि ध्वनि श्रोत्रेन्द्रिय ग्राह्य नहीं है तो ध्वनिमें प्रतिबिम्बका आकार श्रोत्रग्राह्य नही है। जैसे दर्पण नेत्र इन्द्रिय द्वारा ग्रहणमें न आ रहा हो तो दर्पणमें प्रतिबिम्बित होने वाला आकार क्या नेत्र द्वारा ग्रहणमें आ सकता है ? कभी नही ? तो इस प्रकार ध्वनिका शब्दसे अतिरिक्त और कोई स्वरूप बनता ही नही हैं।

शब्दके अल्पत्व महत्वके आरोपमें आकाशकी तुलनाकी अघटितता— अब शंकाकार कहता है कि जैसे बड़े खाईमें या बड़े कमरेमें, आकाशमें महत्वकी बुद्धि होती हैं। ओह ! बहुत बड़ा आकाश है। छोटे कमरेमें या छोटी खानमें यह बुद्धि होती है कि यह तो छोटा ही आकाश है। तो इस प्रकारसे ध्वनि महान है तो उसमें शब्दकी भी महत्ता ज्ञात होती है और ध्वनि यदि मंद है तो उसमें शब्दकी मंदता ज्ञात होती है। उत्तर देते हैं कि यह भी बात युक्त नही है क्योंकि आकाश तो अतीन्द्रिय है। आकाशमें यह महान आकाश है यह छोटा आकाश है यह भेद हो ही नही सकता। और कदाचित् मान लो भेद आकाशमें भी है यह महान है, यह अल्प है, ऐसा ज्ञान मानने लगोगे तो वही बात कही हुई कि छोटी खाईसे घिरा हुआ जो आकाशका प्रदेश है उसे कहते हैं अल्प और बड़ी खाईसे घिरा हुआ जो आकाश

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रदेश है उसे कहते हैं महान। इसमें अनेकान्त दोष क्या आया ? दृष्टान्त भी ठीक शब्दके लिये नही घटित हो सकता। बड़ी हालमें भींट लम्बी चौड़ी है तो लम्बी चौड़ी भींटसे घिरा हुआ जो आकाश प्रदेश है उसे उपचारसे कहा जा सकेगा कि यहाँ आकाश ज्यादह है और सकरी भींटसे घिरा हुआ जो आकाश प्रदेश है उसे कहा जायगा कि यह अल्प आकाश है। इसमें अनेकान्त दोष नही आता है और न शब्दमें अल्प महानका उपचार करनेके लिये दृष्टान्त मिल सकता है।

परिकल्पित निरवयव वर्णमें सर्वव्यापकताकी असंभवता—और, फिर एक बात यह भी है कि वर्णोंको माना शंकाकारने अवयव रहित अर्थात् वर्ण एक अणुकी तरह है जैसे अणुमें अंश नही होते इसी प्रकारसे वर्णमें भी अंश नही होते। शब्द तो वर्णोंके सद्भावका नाम है भले ही शब्द अवयव सहित हो जायें पर वर्ण निरवयव होते हैं। तो निरवयव होनेपर शब्दोंको अणुकी तरह व्यापी नही माना जा सकता। और, अकृत भी नही माना जा सकता है वर्णोंको कि ये वर्ण कभी किये नही गये, अनादि अनन्त सर्वव्यापक हैं ये। तो जो अत्यन्त अकृतक हैं, किये ही नही गए उसमें अर्थक्रिया हो नही सकती। न क्रमसे अर्थक्रिया हो सकती न एक साथ अर्थक्रिया ही हो सकती। तो वर्णको निरवयव माननेसे और अकृतक माननेमे वचन व्यवहारकी प्रवृत्ति नही हो सकती। और, शब्दको माना है सावयव। तो शब्द सावयव क्या है। जो अनेक वर्णोंका समूह है उसका नाम शब्द रखा है। तो निरवयव वर्णों के समूहका नाम शब्द है और निरवयव वर्णमें जो अर्थक्रियाका विरोध है सो उनका समुदाय होनेपर भी शब्दोंमें भी अर्थक्रिया नही हो सकती।

व्यञ्जक ध्वनियोंका श्रावण प्रत्यक्षसे अग्रहण—शङ्काकारने जो यह कहा कि शब्द व्यञ्जक ध्वनिके आधीन होनेसे जहां ही व्यञ्जक ध्वनिया हैं वहां ही शब्द ग्रहणमें आते है। शंकाकारको यह क्यों कहना पड़ा था कि यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि जब शब्द सवव्यापक है नित्य है तो ये शब्द सब देशोंमें क्यों नही सुनाई देते ? जहाँ बोले जाते हैं वहाँ ही सुनाई देते है। तो इसके समाधानका यत्न किया शंकाकारने कि शब्दोंका प्रकट होना व्यञ्जक ध्वनियोंके आधीन है, और वे शब्द उस ही देशमें ग्रहणमें आते हैं। यह कहना यों अयुक्त है कि यह बतलावो कि वे ध्वनियां तुमने किस प्रमाणसे जानी हैं ? जिस कारणसे ध्वनिके आधीन शब्दोंके समूह का सुनना बने, ध्वनियोंको क्या प्रत्यक्ष प्रमाणसे जाना या अनुमानसे जाना अथवा अर्थापत्तिसे जाना ? यदि कहो कि ध्वनियोंका ज्ञान प्रत्यक्षसे किया गया तो प्रत्यक्षमें से किस प्रत्यक्षसे ? क्या श्रोत इन्द्रिय प्रत्यक्षसे अथवा स्पर्शन—इन्द्रिय प्रत्यक्षसे। श्रोत्र प्रत्यक्षसे तो कह नही सकते क्योंकि श्रोत्रसे तो शब्द प्रतिभासमें आता है, ध्वनियाँ प्रतिभासमें आती हैं ध्वनिसे मतलब तालू, कंठ, ओंठ आदिक। शब्दोंकी तरह श्रोत्र इन्द्रियमें भी ध्वनियाँ प्रतिभासित नही होती अन्यथा विवाद ही न रहना चाहिये, और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मानलो कि ध्वनियाँ श्रोत्रइन्द्रियके द्वारा ग्रहीत होती हैं तो इसका अर्थ है कि वही शब्द हुए। जो श्रोत्रइन्द्रियद्वारा ग्राह्य हो उस हीका नाम शब्द है।

व्यञ्जक ध्वनियोंका स्पर्शन प्रत्यक्ष व अनुमानसे अग्रहण—यदि कहो कि स्पर्शन इन्द्रिय प्रत्यक्षसे ध्वनियाँ जानी जाती हैं जैसे कि कोई अपना हाथ अपने मुखपर लगाये हो और फिर बोले तो अपने हाथके स्पर्शनसे ध्वनियोंका ज्ञान होता है कि देखो यह ध्वनि है जिसने हाथको छुवा। अथवा जो कोई बोल रहा हो उसके मुखके उपर यदि कोई जरासी रूई वगैरह चिपकी हो तो उस रूईमें प्रेरणा होती है, रूई हिलती है तो रूईकी क्रियाको छानकर अनुमानसे भी जाना जाता है कि ये ध्वनियाँ निकल रही हैं ? समाधानमें कहते हैं कि यह बात यों युक्त नही कि जैसे तालू आदिक व्यापारके अनन्तर वायुकी उपलब्धि होती है और फिर तुम वायुकी उपलब्धिसे शब्द की प्रकटता सिद्ध करते हो अर्थात् वह वायु शब्दका अभिव्यञ्जक है तो तालु आदिक के व्यापारके बाद शब्दकी तरह कफके अंश भी तो प्राप्त होते हैं तो वह कफांश भी शब्दका अभिव्यञ्जक हो जाय फिर तो यह नही रहा कि शब्दके अभिव्यञ्जक कठ तालू आदिक हैं। यहाँ तालू आदिक व्यापारके बाद जैसे वायुका ज्ञान होता वैसेही उपलब्धि होती है वैसे ही कफांश भी तो उपलब्ध होता है तो यों कफांश भी शब्द अभिव्यञ्जक बन जाय। शंकाकार कहता है कि बोलने वालेके मुखकी जगह ही इन कफांशोंका प्रत्यक्ष हो जाता है। वह मुखसे आगे नही निकलता है। श्रोतावोंके वर्ण प्रदेशमें कफके अंश नही आया करते हैं इस कारण कफांश शब्दके अभिव्यञ्जक नही होते। तालू आदिज व्यापारके अनन्तर जैसे वायुका संसर्ग होता है ऐसे ही कफांशका भी संसर्ग होता है तिसपर भी कफांश कभी मुखसे बाहर नही निकला उसका शब्द सुननेके लिए। वह वहींका वहीं छू छा कर प्रक्षीण सो जाता है। तो उत्तरमें कहते हैं कि यह बात वायुमें भी कह सकते, वायु भी वक्ताके मुख प्रदेशोंमें ही समाप्त हो जाती है और श्रोतावोंके कानोंमें जाती हुई प्रतीत नही होती। यदि कहो कि वायु तो जाती हुई प्रतीत होती है कैसे कि यदि वायु कानमें न जाती होती तो शब्दका ज्ञान नही हो सकता। तो चूँकि अन्यथा शब्दकी प्रतिपत्ति न बन सकती थी अतएव वायुका जाना सत्य है, तो यही बात तुम कफांशके लिए भी कह सकते। यदि कफांश कानोंमें न जाते होते तो शब्दकी प्रतिपत्ति अन्यथा बन ही नही सकती। और जैसे बहुत धीरे बोलने वाले पुरुषके कफांशकी उपलब्धि नही होती अर्थात् बोलनेमें कफकी गिड़गिड़ाहट आदिक ज्ञात नही होती तो यों अत्यन्त मंद बोलने वाले पुरुषके भी वायुकी उपलब्धि नहीं होती इससे जो व्यञ्जक ध्वनियाँ हैं यह न प्रत्यक्षसे जान सकें और न अनुमानसे। जब ध्वनियोंका ही सद्भाव कई प्रमाणोंसे सिद्ध न हो सका तो ध्वनियोंका शब्दमें अभिव्यञ्जक मानना और ध्वनियोंके धर्म शब्दमें उपचरित किया जाता है यह मानना असंगत है।

अर्थापत्तिसे व्यञ्जक ध्वनियोंकी सिद्धि माननेके प्रयासमें तीन विकल्प–

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अब यदि उन व्यञ्जक ध्वनियोंकी प्रतिपत्ति अर्थापत्तिसे मानते हो, किसी तरह कि शब्द जो है नित्य होनेसे उत्पन्न नहीं होता, किन्तु उसकी संस्कृति ही की जाती है। और वह संस्कृति बन नहीं सकती विशिष्टता संस्कृतिमें आ नहीं सकती, यदि ध्वनियां न हों तो इससे सिद्ध है कि ध्वनियां हैं। शब्दकी उत्पत्ति तो होती नहीं, और शब्दोंमें विशिष्ट संस्कार देखे जाते हैं तो उससे यह सिद्ध है कि शब्दमें जो वह विशिष्ट संस्कार आया है वह ध्वनियोंसे आया है। तो शब्द नित्य है शब्द उत्पन्न नहीं होता और उन में संस्कृति देखी जाती है तो फिर वह संस्कृति आई कहांसे ? जिस कारणसे आई उसका ही तो नाम ध्वनियाँ है। यों अर्थापत्तिसे ध्वनियोंका ज्ञान हो जायगा। उत्तर देते हैं कि विशिष्ट संस्कृति जो आप शब्दोंमें कह रहे हैं उसका अर्थ क्या है ? क्या शब्द संस्कारका नाम विशिष्ट संस्कृति है यों श्रोत्र संस्कारका नाम विशिष्ट संस्कृति है अथवा शब्द श्रोत्र दोनोंके संस्कारका नाम विशिष्ट संस्कृति है ? तीनों प्रकारके संस्कार माने भी हैं शङ्काकारने, इस कारण विशिष्ट शब्द संस्कारमें तीन विकल्प किए गए हैं, यदि कहो कि शब्द संस्कारका नाम विशिष्ट संस्कृति है अर्थात् प्रथम पक्ष मानते हो तो यह बतलावो कि शब्द संस्कारका अर्थ क्या है ? क्या शब्दकी उपलब्धिका नाम शब्द संस्कार है या शब्दका स्वरूपभूत कहीं कोई अतिशय आ गया इसका नाम शब्दसंस्कार है या शब्दमें अनतिशय न रहा इसका नाम शब्दसंस्कार है ? अथवा अपने स्वरूपका का परिपोषण होना इसका नाम शब्द संस्कार है या व्यक्तियोंके समवायका नाम शब्द संस्कार है ? अथवा शब्द संस्कारके ग्रहणकी अपेक्षा रखकर शब्दका ग्रहण होता है इसका नाम शब्द संस्कार है ? या व्यञ्जक पदार्थोंके सन्निधान मात्रका नाम शब्द संस्कार है या आवरणके दूर होनेका नाम शब्दसंस्कार है ? इस प्रकार शब्दसंस्कारके अर्थके बारेमें ८ विकल्प किये गये।

शब्दसंस्कारके ८ विकल्पोंमेंसे प्रथम द्वितीय तृतीय पक्षकी असिद्धिका वर्णन—शब्दसंस्कारके ८ विकल्पोंमेंसे प्रथम विकल्प यदि मानते हो अर्थात् शब्दकी उपलब्धिका नाम शब्दसंस्कार है और उस शब्द संस्कारसे ध्वनियोंका ज्ञान होता है याने यदि शब्दोपलब्धिको शब्दसंस्कार कहते हो तो शब्दोपलब्धि ध्वनियोंका गमक कैसे हो सकता है ? क्योंकि ध्वनियाँ तो श्रोत्र मात्रमें हुआ करती हैं। तो भी यदि अन्य निमित्तकी कल्पना करते हो तो फिर हेतुवोंमें अवस्थिति नहीं रह सकती। यदि दूसरा व तीसरा पक्ष मानते हो याने शब्दका आत्मभूत कोई अतिशय ही शब्द संस्कार है व अनतिशयकी निवृत्ति शब्दसंस्कार है तो सुनो ! यहां भी अतिशय तो शब्द स्वभाव ही होता और अनतिशयकी व्यावृत्ति अदृश्य स्वभावका खण्डन मात्र है। सो ये दोनोंके दोनों यदि स्वभावसे अन्य हैं, भिन्न हैं तो अतिशयके करनेपर भी और अनतिशयकी व्यावृत्तिसे भी शब्दमें कुछ नहीं आया क्योंकि ये दोनों संस्कार शब्दसे भिन्न माने हैं। यदि कहो कि ये दोनों शब्दसे अभिन्न हैं अर्थात् अतिशय होना और अनतिशयका हटना ये दोनों भिन्न हैं तो शब्दमें भी क्रियापना होनेसे अनित्यत्वका दोष

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होगा, क्योंकि यह संस्कार किया गया अतिशयकी उद्भूति और अनतिशयकी व्यावृत्ति ये दोनों शब्दसे अभिन्न हैं और दोनों कार्य हैं तो शब्द भी कार्य बन गया। तो जैसे यह संस्कार अनित्य है उसी प्रकाश शब्द भी अनित्य बन बैठा, क्योंकि जो जिससे असमर्थ स्वभावके परित्यागरूपसे सामर्थ्य स्वभावको प्राप्त करता है वह यदि उसका जन्य नहीं है तो फिर जन्यताका व्यवहार कहां होगा ? याने शब्दसे ये अभिन्न हुए दोनों संस्कार और संस्कार है अनित्य और अनित्य संस्कारोंसे अभिन्न शब्द है यह तो शब्द भी अनित्य हो गया अब ध्वनिमें जैसे कि पहिले तो था असमर्थ स्वभाव याने शब्दको प्रकट न करनेका स्वभाव था। अब उस स्वभावका परित्याग किया और सामर्थ्य स्वभावमें आया। अर्थात् अब शब्द प्रकट करने लगे ध्वनि तो इसका अर्थ यही तो हुआ कि शब्द जन्य बन गया। ऐसा भी नहीं कह सकते कि समर्थ स्वभाव ही जन्य होता है, शब्द जन्य नहीं होता। क्योंकि शब्दका इसमें विरुद्ध धर्म बन गया। तब फिर अभिन्न कहां रहा। यह पक्ष तो नहीं रहा कि ये दोनों अतिशयकी उद्भूति और अनतिशयकी व्यावृत्ति शब्दसे अभिन्न होती है और फिर इसमें वही दोष आता है जो कि शब्दमें बताया है। यदि कहो कानके प्रदेशोंमें ही ध्वनिका शब्दका संस्कार है तो इतना ही मात्र शब्द रहा। व्यापक न रहा। शब्दका संस्कार कानोंमें ही हुआ अन्यथा सभीको क्यों नहीं सुनाई देते, यह दोष आता है तो यों शब्दका संस्कार यदि कानोंके प्रदेशमें हो तो शब्द उतना ही मात्र है जो कानोंमें ही आया है। वही शब्द है, इससे बाहर नहीं, व्यापक नहीं, उस ही शब्दका कानोंके प्रदेशसे अन्य जगहमें विपरीत स्वभावसे ठहरे हैं याने स्वभावकी तो जन्यता माने और शब्दकी अजन्यता है ऐसा भेद करके रहे याने कानोंके प्रदेशमें तो शब्दका संस्कार बना और कानोंसे बाहर प्रदेशमें शब्दका संस्कार न बना, ऐसा माननेपर शब्दमें दृश्य और अदृश्यके प्रसंग आ जाता है अर्थात् एक जगह तो शब्द हो गया ज्ञेय और बाकी पड़ा है अज्ञेय और यों फिर शब्दमें सर्वगतपना भी नहीं रहता। निरंशताका व्याघात भी होता, इस कारणसे शब्दको परिणामी मान लो, अनित्य मान लो। तो किसी भी प्रकारके तोड़ मरोड़ करके कल्पनायें न करनी पड़ेगी।

वर्णके अनित्यत्व व कार्यत्वके सिद्ध होनेका निष्कर्ष—जो हम लोगोंने कहा था कि शब्द क्या चीज है, श्रवण इन्द्रियमें आ सकने वाले स्वभाव का विनाश और उत्पत्ति जिसमें होती रहती है ऐसा कोई पुद्गल द्रव्य है, भाषावर्गणाका स्कंध है, जिसमें कि स्रोत्रइन्द्रियद्वारा ग्रहणमें आ जाय और फिर विनष्ट हो जाय ऐसी जिसमें प्रकृति पड़ी है उस ही को शंकाकार लोग वर्ण इस शब्दसे कहा करते हैं। अर्थ भेद तो नहीं रहा, और भी सुनो। जो श्रवणइन्द्रियमें आ जाय, सुननेमें आ जाय ऐसे स्वभाव का जो उत्पाद विनाश है वही तो शब्दका उत्पाद विनाश है, उसीको आप लोग शब्द की अभिव्यक्ति और शब्दका तिरोभाव इस नामसे बोलते हैं। तो शब्द भेदसे बोल लो पर अर्थमें कोई भेद नहीं आता। एक कोई शब्द दृश्य हो जाय और अदृश्य हो जाय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ऐसा स्वीकार करनेसे अद्वैत सिद्ध होगा और ब्रह्मवादका समर्थन होगा और उस ही प्रकार फिर चेतन और अचेतन रूप होनेसे एक ही अवस्थिति रह सकती है, उसका विरोध नही हो सकता है और फिर घट आदिकमें भी इसी प्रकार हम व्यापकपना मान बैठेंगे। कह देंगे कि घट भी देखे गए प्रदेशोंमें दृश्य है और जिन प्रदेशोंमें नही देखा उनमें अदृश्य है ऐसा कहनेमें कौन सा विरोध हो जायगा ? जैसे कि शब्दके बारे मे कहते हो कि जो शब्द कानोंमें आये सो सुननेमें आये, जो कानोंमें न आये सो सुनने में न आये, तो यों ही घटके बारेमें कह देंगे कि घट तो एक ही है। जिस प्रदेशमें देखा गया उस प्रदेशमें दृश्य हो गया, अन्य प्रदेशमें अदृश्य हो गया। इससे जैसे घटकी बात कही जाती है कि जहां घट देखा घट वहाँ है अन्य जगह नही है इसी प्रकार यह मान लेना चाहिये कि शब्द जहां सुननेमें आये शब्द वहाँ है, उससे बाहर शब्द नही है, और सभी जगह इसका संस्कार माननेपर सदा ही उपलब्धि होनी चाहिये। और नही होती उपलब्धि तो फिर कभी भी कदाचित भी न होना चाहिये। इस तरह अतिशय की उद्भूति और अनतिशयकी व्यावृत्ति रूप शब्द संस्कार वह भी सिद्ध नही होता।

शब्दसंस्कारके चतुर्थ पञ्चम व षष्ठ विकल्पका निराकरण—अब चतुर्थ पक्ष मानो कि शब्दका परिपोष होना ही शब्द संस्कार है ध्वनियोंके द्वारा शब्दके स्वरूपका परिपोषण होता है यह शब्दका संस्कार है तो यह भी युक्त नही है क्योंकि शब्द को शंकाकारने नित्य माना और नित्यमें स्वभाव अन्यथा कभी किया ही नही जासकता हैं और यदि स्वभाव भी बदल जाय तो स्वभावके नतिशय पक्षमें जो दोष दिया गया था वह ही दोष यहाँ आता कि वह स्वभाव शब्दसे भिन्न है कि अभिन्न है अथवा व्यक्तियोंसे भिन्न है या अभिन्न है। यदि ध्वनियोंसे स्वभाव भिन्न है तो इसमें शब्दका क्या किया गया ? यदि अभिन्न है तो जैसे शब्द संस्कारकी उत्पत्ति हुई वैसे ही शब्दकी उत्पत्ति हो गयी। इस कारण स्वरूप परिपोष नामक शब्द संस्कार भी सिद्ध नही होता। अब ५ वां पक्ष है व्यक्ति समवाय। अर्थात् व्यक्तियोंका समूह हो जाना यह शब्दका संस्कार है तो यह बात यों अयुक्त है कि वर्णमें व्यक्ति सम्भव ही नहीं है, अयन्था याने शब्दमें व्यक्तिका सत्त्व हो जायगा। तो सामान्य आदिक रूपका प्रसंग हो जायगा। फिर सामान्यमें, इसमें भेद क्या रहेगा ? इस कारण व्यक्तियोंके समवाय होनेका नाम शब्द संस्कार है यह भी बात युक्त नही होती। शंकाकारका वर्ण सादि नही है। वर्ण निरंश है, एक है, नित्य है, सर्व व्यापक है। सादि तो न नित्य होता न सर्वव्यापक होता न एक होता। तो फिर जब वर्णमें व्यक्तित्व ही नहीं है तो व्यक्तियोंका समवाय कैसे होगा। ६ वां पक्ष तो माना गया है कि शब्द संस्कारके ग्रहणकी अपेक्षा रखकर शब्दमें ग्रहण होता है। शब्दका जो श्रवण होता है वह शब्द संस्कारके ग्रहणकी अपेक्षा रखकर होता है। यह भी बात सिद्ध नही होती। क्योंकि शब्द नित्य है, वह अपेक्षा किसकी करता है। यदि अपेक्षा करता है तो इसका अर्थ यह है कि शब्दमें अनित्यत्व है। अपेक्षासे पहिले शब्दमें ग्रहण स्वभाव न था। अपेक्षा

http://sahjanandvarnishastra.org/

करनेपर शब्दमें ग्रहण स्वभाव बना। यों शब्द अनित्य बन बैठा। तो तद्ग्रहणकी अपेक्षा रखकर शब्दका ग्रहण होना यह छठा पक्ष भी नही रहा।

व्यंजकसन्निधानमात्र शब्दसंस्काररूप सप्तमविकल्पका निराकरण—अब ७ वें पक्षका उपचार सुनो। व्यञ्जकोंके सन्निधान मात्रका नाम शब्द संस्कार कहा गया है तो व्यञ्जक तो सदाकाल रहता है, सब जगह रहता है। तो फिर सभी जगह, सब समय सब लोगोंका सब वर्णोंका ग्रहण हो जाना चाहिये। शंकाकार कहता कि जैसे सब समय ग्रहणमें प्रसंग आता है। क्योंकि प्रतिनियत ध्वनिके द्वारा प्रतिनियत वर्ण संस्कृति होती है और प्रतिनियत ही ज्ञानके द्वारा इस प्रकारका सामर्थ्य है। सभी जगह सब लोगोंको सब समय वर्ण सुननेमें आ जायें यह बात यह दोष यों नही होता कि प्रतिनियत ध्वनिके द्वारा प्रतिनियत शब्द संस्कार हुआ करता है। विषयका भी जब संस्कार होना है तब एक ही का तो संस्कार होता है और इसी कारण सर्वज्ञ सर्वदा सभी उसको जान जाय यह दोष नही आता। तो जैसे उत्पद्यमान विषय संस्कार सबके द्वारा नही जाना जाता है इसी प्रकार देश दिशावोंके विभाग बिना सबके प्रति सबके निकट होनेपर भी शब्द सबके द्वारा नही जाने जाते। जिसके समीपमें स्थित नाद हो, शब्द हो वहाँ ही तो संस्कार बनता है और उन्हींके द्वारा शब्द सुना जाता है, इस कारण बाहरमें रहने वाले शब्दश्रुत नही बन पाते। इससे शब्दग्रहण सदा हो यह प्रसङ्ग नहीं आता। उत्तरमें कहते हैं कि यह भी बात युक्त नही है क्योंकि शब्दके उपलम्भका यदि सामर्थ्य नही है, शब्द ग्रहणमें नही आ सकते, ऐसा उसमें स्वभाव है तो सदा ग्रहणमें न आयेंगे। जैसे कोई बहिरे पुरुष होते हैं और उनको शब्द ग्रहणमें नही आया करता है तो कभी भी उसे ग्रहणमें न आयेंगे। जिस समयमें समीपमें स्थित व्यञ्जकोंके द्वारा यह शब्द व्यक्त होता है उस समय उन हीके द्वारा शब्द ग्रहणमें आना यह बात कहना ठीक नही है, क्योंकि शब्दोंके जो व्यञ्जक हैं, तालु कंठ आदिक जो ध्वनियां है उनमें शब्दने क्या किया। जिससे कि वे शब्द व्यञ्जकोंकी अपेक्षा रखें। जो अकिञ्चित्कर होता है उसमें उपेक्षा नही बनती। तो यह बतलावो कि शब्दोंके व्यञ्जकोंने शब्दमें क्या किया ? यदि कहो कि शब्दोंके व्यंजकोंने शब्दोंके ग्रहण करनेमें योग्यता बतायी तो किसकी योग्यता बनायी ? आत्मा की योग्यता बनायी। शब्दकी योग्यता बनायी या इन्द्रियकी योग्यता बनायी। व्यंजक ध्वनियोंने शब्द ग्रहणकी योग्यता उत्पन्न करदी तो वह किसकी योग्यता उत्पन्न की। वहां ही तीन विकल्प किये गए। यदि कहो कि आत्मामें योग्यता करदी कि वह शब्द ग्रहणमें आने लगे तो सदैव ग्रहण होना चाहिये क्योंकि आत्मा सदा है। शब्द सदा है और आत्मामें ही योग्यता करदी। शब्दमें योग्यता कर दी। तो यों भी सदा काल शब्दकी उपलब्धि होनी चाहिए। तो शब्दकी उपलब्धि नही होनी चाहिये। इन्द्रियमें योग्यता करदी ऐसे संस्कारोंका तो अभी निराकरण किया जायगा शंकाकारने और जो यह कहा कि जैसे उत्पद्यमान संस्कार भी सभी पुरुषोंके द्वारा नही जाना जाता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इसी प्रकार शब्द संस्कार भी सभीके द्वारा ग्रहणमें नहीं आता, यह भी युक्त नहीं है। क्योंकि देश काल आदिकको अपेक्षासे हम लोगोंने शब्दका ग्रहण नहीं माना किन्तु कानोंके अन्तर्गत होनेसे शब्दका ग्रहण माना है। इस कारण जिसके ही श्रोत्रोंमें शब्द आये वह शब्द उस ही के द्वारा ग्रहणमें आता है। और जो लोग शब्दको व्यापक मानते है उनके यहां इस दोषका परिहार नहीं हो सकता अर्थात् सभी वर्ण सभी पुरुषोंके श्रवणमें आ जायें तो हमेशा उपलब्धि होनी चाहिये। पुरुष भी सर्वत्र है। कान भी सब जगह हैं और शब्द भी सब जगह हैं फिर क्यों नहीं शब्द सबके ग्रहणमें आ जाते ? इस कारण यह कहना कि व्यञ्जकके सन्निधानके हो जानेका नाम शब्द संस्कार है यह भी युक्त नहीं बैठता।

आवरणविगमरूप शब्दसंस्कारका निराकरण अब ८ वें विकल्पको बात सुनो ! यह कहना कि आवरणके दूर होनेका नाम शब्दसंस्कार है अर्थात् शब्द तो नित्य सर्वव्यापक है उसपर पड़ा हुआ है आवरण। उसका जो विनाश हो उसका ही नाम शब्द संस्कार है तो यह बात भी असत्य है क्योंकि पहिले किसी प्रमाणसे शब्दका सद्भाव सिद्ध करके फिर उसका आवरण सिद्ध करना। जैसे घटका आवरण अंधकार है ना तो पहिले स्पर्शन इन्द्रियके द्वारा उस घटको छू कर जाना तब हम यह सिद्ध कर पाते हैं कि यह अंधकार घटका आवरण है, इस अंधकारके कारण यह घट व्यक्त नहीं हो रहा है तो घटपर आवरण है। वह बात तब जानी जा सकती कि घट का पहिले बोध तो हो जाय। इसी प्रकार शब्दपर आवरण पड़ा है यह बात तभी बन सकती है जब पहिले शब्दका सद्भाव तो सिद्ध करलो। पर शब्दका सद्भाव ही सिद्ध नहीं हो सकता है। फिर आवरण कैसे बताया जायगा कि शब्दपर आवरण है ? शब्द नित्य है, सर्वव्यापक है। ऐसा शब्दका सद्भाव सिद्ध नहीं है, क्योंकि जो नित्य होता है वह अनाधेय होता है। किसीका आधार नहीं पड़ता है और उसमें कुछ दूर नहीं किया जा सकता। वह तो अकिञ्चित्कर हुआ करता है। अकिञ्चित्कर कोई भी किसीका आवरण नहीं बन सकता। अथ तु नित्य शब्दपर कोई आवरण बनाना चाहते हो और आवरणको दूर करनेकी बात कह कर संस्कार सिद्ध करना चाहते हो सो बात यों युक्त नहीं बनती कि शब्द तो नित्य है, उसमें कोई कुछ नहीं किया जा सकता। शब्दमें कोई कुछ करदे ऐसा मानोगे तो इसके मायने है कि वह नित्य न रहा। तो आवरण सारे अकिञ्चित्कर रहेंगे। आवरण नित्यका कुछ नहीं कर सकता। यदि कहो कि शब्दकी उपलब्धिसे प्रतिबन्धका कारण बन जाता है आवरण की सिद्धि है। तो इसके समाधानमें उत्तर देते हैं कि शब्दका तो सदैव रहना स्वभाव है उसमें प्रतिबन्ध क्या आयगा ? और, फिर उस संस्कारमें तो शब्दका ग्रहण करानेका उत्पन्न करानेका स्वभाव तो सदा रहा। उसमें आवरण नहीं बन सकता क्योंकि कार्यका विनाश न होनेपर भी कार्यका क्षय हो जाय तो समझना चाहिये कि वह उसका कार्य नहीं है। शंकाकार कहता है—तो फिर किसी बिगाड़

http://sahjanandvarnishastra.org/

आदिककी ओटमें कोई घड़ा रखा है तो वह किवाड़ आदिक घटके आवरण करने वाले कैसे बन जायेंगे ? उत्तर देते है कि उसके उत्पन्न करने वालेका जो स्वभाव है वह स्वभाव नही रहता इसलिए वह आवरक होता है । फिर कहा कि कैसे दूसरेके उपलब्धिको उत्पन्न करदे तो सुनो । उसमें ऐसा स्वभाव पड़ा हुआ है । एकमें दोनों स्वभाव आ सकते हैं । पहिले उपलब्ध न हो पीछे उपलब्ध हो जाय ऐसी उभयरूपता आ सकती है । ऐसा देखा गया है । शब्दका भी अश्रावण स्वभाव खण्डित कर दिया जाय तो उसमें अनित्यता सिद्ध हो जाती है ।

शब्दको नित्य सर्वव्यापक माननेपर शब्दकी आव्रियमाणकताका अभाव—जब शब्द सर्वव्यापक है तो वह आव्रियमाण हो नही सकता । आवरण करने वाला उन पदार्थोंको कहा करते हैं जिन पदार्थोंके द्वारा आवरण किये जाने योग्य पदार्थ ढक जायें । जैसे घटका आवरण है कपड़ा । कपड़ेके द्वारा घट ढक जाता है इस कारण कपड़ा घटका आवरण करने वाला कहलाता है परन्तु शब्द तो आवरण करने वालेके निकटमें सर्वत्र विद्यमान है, फिर वह किसके द्वारा विद्यमान किया जाय, आवरण करनेपर इन्द्रियाँ फिर विद्यमान नही हो सकतीं, बल्कि उल्टा अगर कहदें कि शब्द आवरण करने वाला है और वह कल्पित प्रतिबन्ध आवरणमें आता है तो इसमें कोई क्या खण्डन कर सकेगा ? यदि कहो कि शब्दकी तरह आवरण करनेवाला भी सर्वव्यापक है, तब तो आवरण करने वाला कुछ न रहा । जैसे आकाश सर्वव्यापक है तो आकाश आत्माका आवरण करने वाला तो नही बनता । यदि कहो कि मूर्त होनेसे घटके आवरणकी बात बनती है या ध्वनियां मूर्त हैं इसलिए आवरक कहलाने लगती हैं, तो इसका अर्थ यह है कि फिर वह शब्द सर्वगत न रहा, क्योंकि शब्द मूर्त बन गया । मूर्त सर्वव्यापी होता नही । इससे सीधा मानना चाहिए कि कंठ तालु आदि व्यापारसे शब्दकी उत्पत्ति होती है, शब्द नित्य नही होता ।

शब्द और आवारकमें आवार्य आवारककी अव्यवस्थाका विवरण—शंकाकार कहता है कि सारे आकाशमें व्यापने वाले बहुतसे इसके आवारक हैं, समस्त आकाशमें इसके आवरक फैले हुए हैं और बहुत हैं इस कारणसे यह दोष नही आता कि बीच–बीचमें शब्दोंका ग्रहण होना चाहिए । पूछते हैं कि वे आवरक क्या अन्तर सहित हैं या अन्तर रहित हैं ? यदि अन्तर है तब तो आवरण नही कहलाया । जब अन्तर पड़ गया शब्दोंके मध्यमें, शब्दोंके एक तरफ, शब्दोंके निकट आवरण रहे तो बाकी बीचमें अपना शब्द प्रकट रहे । यदि कहोकि अपने माहात्म्यसे सान्तर होनेपर भी अपने ही प्रदेशमें वह आवारक अपने शब्दोंका आवारक होता है तो फिर अन्तराल में उन शब्दोंकी उपलब्धि हो जानी चाहिये । जहाँ कि आवारक नही है वहाँ शब्द क्यों नही प्रकट हो जाते ? तो यों सान्तर प्रतिपत्ति होगी और प्रत्येक वर्णमें खण्ड–खन्डसे प्रतिपत्ति होगी । यदि बहुत आवारक माने जाते हैं और वे अन्तर सहित माने जाते हैं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो उसमें शब्दोंका खण्ड–खण्डसे ज्ञान होगा। शब्दको वर्णको तो एक माना है सर्वव्यापी माना है। अब उस एक सर्वव्यापी शब्द पर आवरण बहुतसे हैं लेकिन उनके बीच अन्तर पड़ गया है। तो जहाँ अन्तर पड़ गया है वहाँ ही वर्णका टुकड़ा प्रकट हो जाना चाहिये। यदि कहो कि सर्वत्र सभी समय सर्वरूपसे विद्यमान हैं वर्ण इसलिये दोष नहीं आता। उत्तरमें कहते हैं कि यह बात नही है। यदि सभी जगह सर्वरूपसे वर्ण विद्यमान हैं अथवा आवरण विद्यमान हैं तो प्रत्येक प्रदेशमें बहुतसे आवरण आदिकका ग्रहण होना चाहिये और ध्वनि आदिककी विफलता होनी चाहिये। क्योंकि अब तो ध्वनियोंके अभावमें भी अन्तरालमें शब्दोंकी उपलब्धि होने लगी। यदि कहो कि अन्तरालमें ध्वनियां नहीं भी हैं फिर भी आवरक हैं तब एक ही आवरण करने वाला कोई पदार्थ मानना चाहिये। फिर बहुत आवरक माननेसे क्या प्रयोजन ? जो दूसरी जगह नही है वह आवरक कैसे हो सकता है अथवा अन्तरक से जो नही है वह आवरक कैसे हो जायगा यदि यह शंका करते हो तो अन्तरालकी तरह यहां भी समझ लेना चाहिए। इस कारण सान्तर आवरक होकर वे शब्दों को ढकते हैं यह बात नही बनती। यदि कहो कि वह आवरक निरन्तर है, सारे आकाशमें व्यापकर रहता है निरन्तर है, तो जब आवरक निरन्तर हो गए और उसीकी तरह शब्द भी निरन्तर हैं तो अब न कोई आवार्य रहा और न कोई आवरक रहा, क्योंकि आवरण करने वाला भी सर्वत्र है और आवरण करने योग्य जिसे कहा जा रहा है वह भी सब जगह है। तो जब समानरूपसे हैं वे दोनों तो उसमें कोई आवरक कहलाये, कोई आवरण कहलाये यह बात कैसे सम्भव है ? यदि कहो कि वस्तुका स्वभाव ऐसा है कि जो स्तिमित वायु है वह आवरक कहलाती है, यह बात भी ठीक नहीं क्योंकि वस्तु कोई दिखे तो उसमें यह बात कही जा सकती है कि यह आवरक है। जैसे अग्नि देखा तो हम जानते हैं कि अग्नि दाहक स्वभाव है। कहते हैं कि स्वभावसे ही अग्नि जलाती है। जलका दाहक स्वभाव नहो है यह हमें दिखता है और इसका प्रयोग करते हैं तो हमें इसका प्रत्यय है पर इस प्रकारकी वायु तो नही देखी गई क्या वायु आंखोंसे दिखी, प्रयोगमें आयी कि वह आवरण करने वाली है वायु। चलो आवरण नही रहा पर यह कुछ दिखनेमें आये तब तो उनका स्वभाव माना जाय भी। जिसे कि नित्य व्यापक माना है। सर्वत्र सत होता हुआ भी वायुवों के द्वारा आवर्यमाण भी नहीं होता जिससे कि यह कहा जाय। अदृष्टकी कल्पना करना तो दोनों जगह समान है तो जब शब्द भी सर्वव्यापक है और आवरक भी निरन्तर है तो उसमें यह व्यवस्था नही बनती कि शब्द तो आवार्य है और आवरण आवरक है।

ताल्वादिकव्यापारसे ध्वन्यात्मक शब्दोंकी उत्पत्तिका कथन— अथवा हो ऐसा, शब्दका आवरण भी बना आये और निरन्तर रहा आये तो भी इसका विनाश कैसे होता। यह आवरण दूर किस प्रकार होता है ? यदि कहो कि ध्वनियों से दूर होता है तो अभी ध्वनियोंके सद्भावका सिद्ध करने वाला प्रमाण ही कुछ नही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। ध्वनियां ही असत् हैं। तब फिर ध्वनियोंमें आवरणकी बात कहना कहां तक ठीक है? अथवा मान लो ध्वनियां हैं तो उन ध्वनियोंकी उत्पत्ति कैसे हुई? किन साधनोंसे ये ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं? यदि कहो कि तालु आदिकके व्यापारसे ध्वनियाँ उत्पन्न हो जाती है तो यह बात युक्त नही है क्योंकि उसी तरहसे तो तालू आदिकके व्यापार होनेसे शब्दकी भी उपलब्धियां होती हैं, फिर तो तालु आदिकका कार्य शब्द हो गया। अब वहां इतनी परम्परा मानना कि तालु आदिकका व्यापार होनेपर ध्वनियां उत्पन्न होती हैं और उन ध्वनियोंमें शब्दोंकी व्यक्ति होती है। सो प्रकटरूप होता है कि कंठ तालु आदिकका व्यापार होनेपर शब्दकी उत्पत्ति देखी जाती है।

शब्दाभिव्यक्तिमें खातावष्टब्ध आकाशकी तुलनाकी अघटितता—अब शंकाकार कहता है कि जैसे खात खोदनेके अनन्तर यहां प्रकाशकी उपलब्धि होती है और आकाश खानका कार्य नही हैं यों इस अनुमानसे तुम्हारे हेतुमें अनेकान्तिक दोष हो गया अर्थात् तालू आदिकके व्यापार करनेसे शब्दकी उपलब्धि तो होती है मगर इससे शब्द उनका कार्य हो जाय तो खान खोदनेके अनन्तर आकाशकी उपलब्धि होनेसे आकाश भी उनका कार्य हो जायगा। जैसे जलसे भरे हुए आकाशसे जलको अगल बगल किया तो आकाश प्रकट हो जाता है। वह नित्य है। सदा सत् है, जलसे ढका था, जलका आवरण हटाया तो आकाश प्रकट हो गया, भूमिका आवरण हटाया तो आकाश प्रकट हो गया, इसी प्रकार कान आदिकका व्यापार हुआ तो वहां शब्द प्रकट हो गया पर इससे शब्द कार्य हो जाय यह बात नही बनती। इसका समाधान करते हैं कि यह बात संगत नही है। यदि तालु आदिकके व्यापारके अनन्तर शब्दकी उपलब्धि होनेपर भी शब्दको तालु आदिक व्यापारका कार्य नही मानते तो ध्वनियां भी तालु आदिक व्यापारोंके कार्य न हो सकेंगी। अथवा जो शंकाकारने दृष्टान्तमें यह बताया कि आकाश तो एकरूप है किन्तु भूमिके खोदनेसे, जलके हटानेसे वहाँ आकाश प्रकट हो जाता है। तो यों आकाशकी एकरूपता भी असिद्ध है। क्योंकि यह बतलावो कि उस आकाशमें अपना ज्ञान उत्पन्न करनेका एक स्वभाव पड़ा हुआ है क्या? यदि आकाशमें अपना ज्ञान उत्पन्न कर देनेका स्वभाव पड़ा हुआ है तो फिर खोदनेके बाद ही क्यों आकाशकी उपलब्धि हुई? उससे पूर्व भी उपलब्धि हो जाना चाहिये। यदि विशेष ा मानते हो कि आकाशमें अपना ज्ञान उत्पन्न करनेका भी स्वभाव पड़ा है और कभी अपना ज्ञान उत्पन्न न करनेका भी स्वभाव पड़ा है तब आकाशमें एकरूपता तो न रही।

तात्वादिक व्यापारसे ध्वनियम शब्दकी उत्पत्तिका प्रतिपादन—प्रत्यभिज्ञानसे शब्दमें पहिले सत्वकी सिद्धि करना यह तो बात ध्वनिमें भी समान बनती है। जैसे ध्वनियोंको पहिलेसे सत् नही माना। वे तालु आदिक व्यापारके बाद

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अपना स्वरूप रखते हैं तो यों ही हम शब्दके सम्बन्धमें भी कह सकते हैं कि तालु आदिक व्यापारसे पहिले भी प्रत्यभिज्ञानसे ध्वनिकी सिद्धि है। जो ही ध्वनि पहिले अकारादिकी व्यञ्जक बनती है। वही ध्वनि पीछे भी है और फिर इस तरह ये व्यञ्जक भी सब जगह, सब समय मौजूद हो गये, फिर तालु आदिकका व्यापार करना विफल है, क्योंकि सब जगह सर्वसमय शब्दोंकी अभिव्यक्ति प्रतीत हो जायगी। इस कारण ध्वनि ही तालू आदिकके व्यापारका कार्य हो सो बात नहीं है ध्वनियां शब्दसे क्या कुछ अलग हैं ? शंकाकार कुछ अपना ऐसा आशय रखता है कि जैसे कोई शब्द स्पष्ट न निकले, अस्पष्ट हों, शब्दों जैसी सकल न हो और फिर आवाज आये तो वह ध्वनिका रूप रखता है और जब शब्द स्पष्ट हो जाता है तो स्पष्ट होनेपर भी जो ध्वनिका रूप है वह तो रहता ही है और स्पष्टता होनेसे वहां शब्दकी अभिव्यक्ति हो गयी है ऐसे ही भावको रखकर शंकाकार तालु आदिकके व्यापारसे तो ध्वनियोंकी उत्पत्ति मानता है और फिर उन ध्वनियोंको शब्दका अभिव्यञ्जक मानता है। इस प्रकार उनमें भेद डालते हैं। लेकिन भेद नहीं है। तालु आदिकके व्यापारका कार्यपना ध्वनियोंमें ही हो सो बात नहीं। ध्वनि भी शब्द ही कहलाती है। शब्द तालू आदिक व्यापारके कार्य कहलाते हैं फिर कैसे ध्वनियोंका अलग सत्त्व हो जायगा क्योंकि पृथक उत्पादकका अभाव हो गया। वे ही तालु आदिक व्यापार शब्दके उत्पादक हो गए फिर ध्वनियोंके उत्पादकपनेकी बात क्या कही जा सकती है ?

अभिन्न देशमें अभिन्न इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य आवार्यमें आवरणभेदकी अप्रतीति अथवा चलो रही आयें वे ध्वनियाँ अथवा आवरण तो भी इन ध्वनियोंको आवरणका हटाव माननेपर जैसे विवक्षित वर्णकी अभिव्यक्ति होती है इसी प्रकार समस्त वर्णोंकी उपलब्धि हो जानी चाहिये। यह भेद कहाँ रहा कि वर्ण तो है नित्य, सर्वव्यापक और कहीं आवरणका हटाव, तो आवरणका हटाव होनेपर वही वर्ण प्रकट हो अन्य वर्ण प्रकट न हो यह भेद कैसे बन जायगा क्योंकि वर्ण तो सर्वत्र व्यापक है आवरण हटा तो वर्ण सामान्य प्रकट हुआ। उनमेंसे कोई एक वर्ण प्रकट हो, जिसको कहनेकी इच्छा है वही वर्ण तो प्रकट हो पर अन्य प्रकट हो ऐसा भेद क्यों बन जाता है ? और यदि ऐसा मानते हो, किसी भी ध्वनिसे कहींका भी आवरण हटे तो वहां विवक्षित वर्णकी उत्पत्ति होती है, तब फिर अन्य ध्वनियोंके माननेकी विफलता हो जायगी, अन्य ध्वनियां अनर्थक हो जायेंगी। कुछ भी ध्वनि हो, कुछ भी आवरण हटे वहां विवक्षित वर्णकी उत्पत्ति होने लगेगी। शङ्काकार कहता है कि आवार्य शब्दोंकी तरह आवरकोंका भेद है और उन आवरकोंके भावोंकी तरह उन आवरणोंको हटा देने वाले साधनमें भेद है, इस कारण यहाँ यह दोष नहीं आता। इस व्यञ्जक वायुके अनेक अवयव हैं इस कारणसे जैसे अवयव दूर होते हैं, उस-उस प्रकारसे वर्णोंकी व्यक्ति होती है। वायु दूसरोंके लिए प्रेरित हुआ करती है। दूसरे शिष्योंको समझाने के लिए वायुकी प्रेरणा की जाती है तो जैसे समझाना चाहिए उस ही प्रकारसे वायु

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निकलती है और उस हीके अनुरूप शब्दोंकी व्यक्ति होती है। तो इसमें विवक्षित वर्ण प्रकट हुआ और ध्वनियोंकी भी विफलता नहीं है, सब बातें व्यवस्थित हो जाती हैं। समाधान करते हैं कि यह सब भी बिना विचारे कहा है। अभिन्न प्रदेशमें अभिन्न इंद्रिय द्वारा ग्राह्य शब्दोंमें आवरणके भेद अथवा अभिव्यञ्जक करने वाले यथार्थका भेद प्रतीत नहीं होता जैसे कि घड़ा सकोरा आदिक पदार्थोंमें उन उन प्रकारके आवरणों को व्यंजित करने वाले भेद देखे गये हैं अथवा कुछ पदार्थ रखे हुए हैं और उनपर पर्दा डाल दिया, कागज ढक दिया, ऐसे नाना आवरण होते हैं इस प्रकारसे शब्दोंके आवरकमें और अभिव्यञ्जकमें भेद नहीं है, इसीको अनुमान द्वारा देखिये ! शब्द प्रतिनियत व्यञ्जकोंके द्वारा व्यंग्य नहीं होते, क्योंकि समान देशमें और एक ही इंद्रियके द्वारा वे शब्द ग्राह्य हैं घट आदिककी तरह। जैसे एक ही जगह घट रखा हो और वह सब एक आँखके द्वारा ही ग्राह्य हो जाता है तब वहां यह तो नहीं कहा जा सकता कि प्रतिनियत व्यञ्जकोंके द्वारा प्रकट हुए या प्रतिनियत आवरणोंके द्वारा वे ढके गए। तो इसी तरह शब्द भी जब समान देशमें और एकेन्द्रिय द्वारा ग्राह्य होते हैं तो वे प्रतिनियत आवरणोंके द्वारा आवार्य नहीं होते। जो आवार्य वर्ण माने हैं उनमें देश का भेद करना युक्त नहीं है। ढके हुए वर्णोंमें अगर देशभेद हो जाय, ये यहांके ढके वर्ण हैं, ये यहांके ढके वर्ण हैं आदिक तो वर्ण व्यापक न रह सकेंगे क्योंकि जो देशभेद हुआ करता है, परस्पर एक दूसरेके देशके परिहारसे रहा करते हैं। जैसे गाय अलग खड़ी, हाथी अलग खड़ा, तो गायके देशमें ही तो हाथी नहीं आया, हाथीके ही देशमें गाय तो नहीं आयी ? तो देशभेद बन गया। तो इस प्रकार आवरक भेद जब न रहा तो वहां जातिभेदकी कल्पना करना और उन आवरणोंको हटाने वाले पदार्थमें जातिभेदकी कल्पना करना कैसे ठीक बन सकती है, जिससे कि जातिभेद वाली बात बने और जातिभेदसे शब्दका भिन्न भिन्न प्रकारका संस्कार बने यह नहीं हो सकता।

एकेन्द्रिय ग्राह्य व्यङ्ग्यमें व्यञ्जकभेदकी मीमांसा शंकाकार कहता है कि एकेन्द्रियके द्वारा भी ग्राह्य हो कोई व्यंग्य तो भी उसमें व्यञ्जकका भेद देखा गया है। जैसे कि पृथ्वीकी गंध एकेन्द्रियके द्वारा ग्राह्य है अर्थात् घ्राणेन्द्रियसे गंधका ज्ञान किया जाता पर उसका व्यञ्जक है जलका सींचना, अर्थात् जमीनपर कुछ थोड़े जलके कण सींचने से जमीनमेंसे गंध निकलती है। गर्मीके दिनोंमें कहींकी जमीन बहुत तप्त हो गयी हो और उसमें जलके छींटे डाले जायें तो उसमेंगंध प्रकट होती है। तो देखो भूमिकी गंधका प्रकट करने वाला तो है जल सिञ्चन पर शरीरके गंधका प्रकट करने वाला जल सिंचन नहीं हो सकता। शरीरकी गंधका व्यञ्जक तो दवाइयों सहित तैल का मालिस करना बन सकता है, वह भूमिके गंधका व्यञ्जक नहीं है। देखिये—गंध एकेन्द्रियके द्वारा ग्राह्य भूमिकी गंध भी घ्राणेन्द्रियसे ग्रहणमें आती है और शरीरकी गंध भी घ्राणेन्द्रियसे ग्रहणमें आती है किन्तु भूमिकी गंधका व्यञ्जक तो है जलसिंचन और शरीरके गंधका व्यञ्जक है तैल मर्दन। तो एकेन्द्रियके द्वारा ग्रहण होने पर भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

व्यंग गंधका बन व्यञ्जनोंमें भेद पाया गया है तो इसी तरह व्यंग्य वर्ण एकेन्द्रियके द्वारा ग्राह्य है सो रहा आये तो भी व्यञ्जकभेद पाया जाता है। समाधानमें कहते हैं कि तुम्हारी बात दृष्टान्तमें किसी दृष्टिसे सत्य है। यह बात देखी गई है कि एकेन्द्रिय के द्वारा ग्राह्य भूमिगंध और शरीरगंध इन दोनोंके द्वारा व्यञ्जक अलग-अलग है लेकिन वह सब तो विषयोंके संस्कार करने वाले व्यञ्जकोंकी बात हुई, पर आवरण के हटनेके कारणमें तो भेद नही आया। यह तो विषयके संस्कार करने वाले व्यञ्जक का भेद हुआ, आवरणके हटानेका भेद तो नही हुआ। अथवा गंधके अभिव्यञ्जक जल सिचन आदिक नही है, क्योंकि गंधके कारक हैं। जलसिंचन करनेसे भूमिगंधकी उत्पत्ति हुई है यह नही, इस ही प्रकारकी गंध भूमिमें थी। जल सिचनसे पहिले अब जलसिंचन ने उस ढकी हुई गंधको व्यक्त कर दिया वह बात नही, किन्तु जलकी सेंकने उस उत्पन्न हुई भूमिमें गंधको उत्पन्न कर दिया। क्योंकि उस गंधको उत्पन्न करनेमें सहकारी कारणोंसे पहिले उस प्रकारकी गंध न थी। तब और प्रकारकी गंध थी, जो घ्राणेन्द्रिय के द्वारा ग्राह्य होती थी अब जल सिचन करनेसे अन्य प्रकारकी गंध बन गई तो कारकोंके सम्बन्धमें तो यह नियम बन जाता है कि एकेद्रिन्द्रयके द्वारा ग्राह्य कार्यमें समान देशमें कारकोंका नियम देखा गया है। जैसे कि एक जगह स्थित होने वाले जौ गेहूँ चावल आदिकके बीज सभीके सभी एक दूसरेको उत्पन्न नही कर सकते। चावल चावलके ही अंकुर उत्पन्न करते हैं, जौ जौके ही अंकुर उत्पन्न करते हैं तथा गेहूँ गेहूंके ही अंकुर उत्पन्न करते हैं। जब कारण भिन्न भिन्न हों, कारक भिन्न भिन्न हों तो कार्य भी भिन्न भिन्न प्रकट हो जाता है।

शब्दके कार्यत्वका विवरण—शब्द एक है, नित्य है, व्यापक है और फिर उसको व्यञ्जक प्रकट करदे यह बात नही बनती। सीधी बात और सबके अनुभवमें आने वाली स्पष्ट बात है कि तालू आदिकके व्यापारके अनन्तर भाषा वर्गणा जातिके पुद्गल स्कंधसे शब्दकी उत्पत्ति होती है और तभी जिस प्रकारके तालू, कंठ, ओंठ मूर्धा आदिक चलें और उन स्थानोंमें ऊपरके भागसे, नीचेके भागसे शब्द चलें तो उन शब्दोंमें अल्प, महान, उदात्त अनुदात्त आदिक भेद बन जाते हैं। तो यों शब्द कोई नित्य व्यापक नही है जिससे नित्य व्यापक शब्दसे भरे होनेके कारण आगमको नित्य माना जाय। अपौरुषेयताकी मान्यता करके आगममें प्रमाण करार किया जाय। आगम तो वचनरूप है। वचन जितने होते हैं वे किसी न किसीके द्वारा किए गए होते हैं। तो उन वचनोंका कर्ता यदि गुणवान पुरुष है प्रभुसर्वज्ञ है तो वह आगम वाक्य प्रमाण है। यदि उन आगम वाक्योंका कर्ता दोषवान है तो फिर उससे उन की प्रमाणता नही आ सकती है? तो आगममें प्रमाणताका आना न आना, गुणवाण और दोषवान वक्ताके आधारपर है वचनोंको नित्य सिद्ध करके फिर उसमें प्रमाणताकी सिद्धि करनेका व्यर्थ कष्ट न करना चाहिये।

इन्द्रियसंस्कारसे भी प्रतिनियत शब्दाभिव्यक्तिके पक्षका निराकरण—

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शब्द संस्कारके जो ७—८ विकल्पोंमें पूछा गया था वे कोई विकल्प सिद्ध नही होते, इसलिए शब्द संस्कार होनेसे कहीं शब्द सुनाई देता है कहीं नही सुनाई देता है, तो कोई शब्द सुनाई देता है कोई नही, यह व्यवस्था नही बन सकती है। यह व्यवस्था तो शब्दकी उत्पत्ति माननेपर ही बन सकती है। शब्दकी उत्पत्ति होनेके स्थान हैं तालु आदिक स्थान उन स्थानोंका जैसा संयोग अथवा वियोग होता है दोनों ही स्थितियोंके निमित्तसे शब्दवर्गणा जातिके पुद्गलमें शब्दरूप परिणमन होता है। तो शब्द संस्कार होना और शब्द नित्य होना ऐसी व्यवस्था नही बनती। अब यदि इन्द्रिय संस्कार मानते हो अर्थात् श्रोत्र इन्द्रियमें संस्कार होनेसे ये शब्द कोई सुनाई देते हैं कोई नही सुनाई देते हैं यह व्यवस्था बनती है जो कान असंस्कृत हैं, जिसके कर्ण इन्द्रियके भीतर की शष्कुली एक गोल रचना संस्कृत नही है ऐसा श्रोत्र शब्द नही सुनता है, इस तरह अधिष्ठान भेदसे भी अधिष्ठानके संस्कारसे भी शब्दोंमें कुछ शब्द सुनाई देते कुछ नही सुनाई देते, यह व्यवस्था बनती है। यद्यपि शब्द व्यापी है, एक है लेकिन ध्वनिमें तो संस्कार होता है सो वह संस्कार जिस अधिष्ठानमें है उसके भेदके अनुसार शब्दका ज्ञान होगा। ऐसा श्रोत्र संस्कार माननेसे शब्दमें प्रतिनियत व्यवस्था बननेका प्रकाश करना व्यर्थ है, कारण यह है कि यहां भी एक बार जो श्रोत्रइन्द्रिय संस्कृत हो जाय तो वह एक साथ समस्त वर्णोंने सुन लेगा। जैसे कि अंजन आदिकसे चक्षुका संस्कार कर दिया जाय तो वह चक्षु निकट वर्ती समस्त संस्कारोंको देख लेता है। वहाँ ऐसा भेद नही पड़ता कि इन सन्निहित पदार्थोंमेंसे अमुक पदार्थको तो चक्षु देखें और अमुक को न देख सकें। जैसे संस्कृत चक्षुमें यह भेद नही है कि वह किसी पदार्थको देखे और किसीको न देखे। एक बार संस्कार कर दिया नेत्रमें देखनेकी योग्यता आगयी, तो जो भी सामने हो उसे देख लेगा। सामने आये हुए पदार्थोंमें से किसीको न देखे यह भेद नही बन सकता। इसी प्रकार किसी औषधि वाले तैलसे श्रोत्रको संस्कृत कर दिया जाय तो वह श्रोत्र किन्हीं वर्णोंको सुननेमें समर्थ है और वर्ण हैं सर्वत्र रहने वाले, तब श्रोत्र इन्द्रिय सभी वर्णोंको एक साथ सुनले। इसीसे यह कहना भी निराकृत हो जाता है कि जैसे प्रदीप आदिक घट आदिकका अभिव्यञ्जक है नेत्रके अनुग्रहसे इसी प्रकार यह ध्वनि श्रोत्रमें संस्कार करनेसे यह वर्णादिकका अभिव्यञ्जक है, क्योंकि शब्द सर्वत्र है और संस्कार हो गया श्रोत्रइन्द्रियका, तो सभी शब्द एक साथ सुननेमें आने चाहियें ना? जैसे प्रदीप जल रहा है और चक्षुका भी अनुग्रह चल रहा है नेत्रइन्द्रिय भी जानने के लिए तैयार है तो वहाँ घट पट आदिक अनेक पदार्थोंको ग्रहण कर लिया जायगा। इसीप्रकार श्रोत्रइन्द्रिय जब ध्वनिसे अनुग्रहीत हो गई तो एक ही समयमें श्रोत्रइन्द्रिय अनेक शब्दोंको सुन ले ऐसा प्रसंग आ जायगा। उसका प्रयोग भी बना लीजिये। श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा ग्राह्य और अभिन्न देशमें अवस्थित पदार्थोंके ग्रहण करनेके लिये प्रतिनियत संस्कारोंसे संस्कार नही होता इन्द्रिय होनेसे चक्षुकी तरह। इसका भाव यह है कि जैसे आँखमें अंजन सुरमा लगा लिया जाय जिसके द्वारा आँखका अनुग्रह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो जाय। आँखमें अतिशय आ जाय ऐसा आँखके द्वारा अब यह न होगा कि सामने रहने वाले पदार्थोंमेंसे किसी पदार्थको जाने और किसी स्थूल पदार्थको न जाने, क्योंकि जब आँख निर्मल होता है, दोष दूर कर दिया। आँखसे अब दिखने लगा तो जो भी सामने हो सब दिख जायगा। इसी प्रकार श्रोत्र इन्द्रियका संस्कार कर दिया, शब्द सर्वत्र है तब फिर क्या वजह है कि वहां सारे वर्ण ही एक साथ सुननेमें नहीं आते। वहां यह भेद न बन सकेगा कि इस तरहका संस्कार करे तो अमुक वर्ण सुनाई दे इस तरह वह संस्कार करे तो अमुक वर्ण सुनाई दे। ऐसा भेद नहीं हो सकता है। तो इस तरह श्रोत्र इन्द्रियका संस्कार करनेसे नित्य व्यापक वर्णोंमेंसे कोई वर्ण सुनाई दे कोई न सुनाई दे, यह व्यवस्था नहीं बनाई जा सकती।

उभयसंस्कारसे भी प्रतिनियत शब्दाभिव्यक्तिकी असिद्धि—अब यदि तीसरा पक्ष लेते हो कि इन्द्रिय और शब्द दोनोंका संस्कार होता है तो वहां प्रतिनियत वर्णका श्रवण होता है। यद्यपि उभयसंस्कार पक्षमें यह कह सकते कि केवल इन्द्रिय संस्कार माननेपर दोष आता है जिससे प्रतिनियत शब्दका अभिव्यंजक नहीं बनता। और केवल शब्दसंस्कार माननेसे भी दोष आता है। तो अब दोनों ही संस्कार एक साथ माने जायेंगे कि शब्दमें भी संस्कार हो और श्रोत्र इन्द्रियमें भी संस्कार हो तो प्रतिनियत वर्ण सुनाई देनेकी व्यवस्था बन जाती है। केवल एक संस्कारमें जैसे कि शब्द संस्कार किया तो शब्द संस्कार मात्र माननेपर दोष आता है और इन्द्रिय संस्कार किये बिना तो उसमें भी दोष आता है। तो जो इन्द्रिय संस्कार माननेपर आता था वह दोष शब्द संस्कार माननेपर दूर हो जाता है। जो दोष शब्द संस्कार माननेपर दूर हो जाते हैं, इस कारण उभय संस्कारसे प्रतिनियत वर्णके सुननेका विधान बनता है और इसी कारण सबके द्वारा समस्त शब्द नहीं सुनाई देते। क्योंकि वहाँ कोई एक संस्कार शेष रह गया है यह कहना भी अयुक्त है क्योंकि जिस समय एक वर्णको ग्राहकपनेरूपसे श्रोत्रइन्द्रियका संस्कार किया जाय तो जब श्रोत्र संस्कारसे संस्कृत वर्ण जाना जा रहा है तो उस समय वहाँ ही रहने वाले सब वर्णोंको क्यों न जाना जाय ? क्योंकि वर्ण नित्य है। तो वर्ण संस्कार भी सदा सब जगह ज्योंका त्यों हो रहा है। तो शब्द संस्कार भी है और जिस समय श्रोत्र संस्कार किया जा रहा तो उस समय समस्त शब्द ग्रहणमें आ जाना चाहिये। इस कारण व्यंग्यमें व्यंजक भावके धर्मके आरोप करनेकी युक्ति सिद्ध नहीं बैठती तो व्यंजक व्यक्तियोंके आधीन भिन्न देश काल स्वभाव होनेसे शब्दकी उपलब्धि होती है यह बात युक्त नहीं है। प्रत्युत ध्वनियोंके स्वभाव भेदके कारण यह प्रतिनियत वर्णकी व्यवस्था बनती है।

शब्दोंकी अनेकता सिद्ध करने वाले हेतुमें जलपात्रादित्यके साथ व्यभिचारका अभाव—अब शंकाकार कहता है कि जैसे सूर्य तो एक है और जलसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भरी हुई थालियां १० रखदी जायें तो एक होनेपर भी सूर्य १० जगह दिखाई देता है। इसी प्रकारसे वर्ण तो पंचमें एक है पर ध्वनिके भेदसे, अधिष्ठानके भेदसे नाना जगह वे शब्द प्रतीत होते हैं। यह कहना भी अयुक्त है। क्योंकि उन जलपात्रोंमें पाये जाने वाले जो सूर्यका प्रतिबिम्ब है वह एक नहीं है। यदि १० जगह जलपात्र हैं तो उन १० में प्रतिबिम्ब पड़े हुए हैं तो वह प्रतिबिम्ब अपने आधारभूत प्रत्येक जलपात्रमें पाया जा रहा है। उस समय यह कहना कि उन १० जलपात्रोंमें भी गगनमें रहने वाला एक ही सूर्य उपलब्धिमें आ रहा है। क्योंकि इसमें कोई बिगाड़ नहीं है यह ठीक नहीं। १० जलपात्रोंमें जो सूर्य प्रतिबिम्ब नजर आ रहा वह सूर्यकी बात नहीं है किन्तु १० जलपात्रोंकी बात है। सूर्यका सन्निधान पाकर वे १० जलपात्र उन में भरा हुआ जो जल है उन जलोंमें जलका ही प्रतिबिम्बरूप परिणमन हुआ है। कहीं उन १० थालियोंको देखकर ऊपरका सूर्य नहीं दिख रहा है बिना ऊपर नेत्र किये ? तो उन जलपात्रोंमें आकाशमें रहने वाला ही सूर्य दिख रहा है इस बात को न तो प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्धि करता है न अन्य प्रमाण। जो जलपात्र दिख रहे हैं वे जलपात्र ही उन प्रतिबिम्बोंरूप परिणमा है। सो नेत्र उन जलपात्रोंकी ही चीज को देख पाता है। सूर्यका स्वरूप तो एक है और जो आसमानमें उपस्थित है वह स्वरूप इन थालियोंमें प्रकट नहीं हो रहा। जो कुछ अवभासमान हो रहा है वह जलपात्रमें रहने वाला प्रतिबिम्ब जो कि अनेक रूप है वह प्रतिभासमें आ रहा है। जल से भरी हुई थालियोंको देखकर जलमें उठे हुए जलके आश्रयमें रहने वाले प्रतिबिम्बों का तो दर्शन हो रहा है पर आकाशतलमें रहने वाले सूर्यका वहाँ दर्शन नहीं है।

वृक्ष और वृक्षछायावत् सूर्य और सूर्यप्रतिबिम्बमें भेद – जैसे वृक्ष और वृक्षकी छायामें वृक्ष तो वृक्षमें है वृक्षकी प्रत्येक बात वृक्षमें है और वृक्ष कितना है जितना कि तना, शाख, डाली, झोंका, पत्ता, फूल, फल आदिक जो कुछ उस वृक्षमें हैं वे ही वृक्षके हैं। अब वृक्षके पत्ते शाखेसे बाहर जो भी चीज हो वह वृक्षकी नहीं है। तो अब देख लीजिये कि वृक्षकी छाया वृक्षसे ही बाहर तो हो रही है, जमीनपर हो रही है, किसी किसी वृक्षकी छाया वृक्षसे कितनी ही गुनी बड़ी देखी जाती है। वृक्ष तो है सड़क के बाहर या पृथ्वीतलपर जो छाया पड़ रही है वे वृक्षकी नहीं है। निमित्त तो वृक्ष हुआ, पर वह छाया पृथ्वीका परिणमन है। इसी तरहसे सूर्य एक है आसमानमें। अब यहां पानीसे भरी हुई १० थालियां रख दी तो उनमें जो प्रतिबिम्ब पड़ रहा है वह सूर्यकी चीज नहीं है किन्तु जलकी चीज है। जलका ही भासुर रूप एक चमकदार स्वरूप छायारूपमें प्रतिबिम्ब रूपमें बन गया है। तो वहां जो १० जलपात्रोंमें जो कुछ दिख रहा वह जलपात्रकी ही चीज दिख रही है सूर्य तो गगनतलमें मौजूद है। ऐसा नहीं हो सकता कि अन्यका प्रतिभास होनेपर अन्यका प्रतिभास हो जाय। अर्थात् जलपात्रोंमें रहने वाली छायाका प्रतिभास होनेपर सूर्यका प्रतिभास हो जाय, यह बात नहीं बन सकती। और, न ऐसा भी कह सकते कि जलभानुका गगनभानुके साथ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सादृश्य होनेसे एकत्व हो गया। अर्थात् उन १० जलपात्रोंमें जो सूर्यका प्रतिबिम्ब आया उसमें तो जल सूर्य है। आकाश सूर्य नही है। जलके आधारमें प्रकट होने वाला सूर्य प्रतिबिम्ब है। आकाशके आधारमें आकाशमें उस ऊंची जगहपर रहने वाला सूर्य इन जलपात्रोंमें नही है और न सदृशता होनेसे एकत्व कहा जा सकता है। क्या जो एक समान हो वह एक हो जाता है। जैसे जल पात्रोंमें उठा हुआ प्रतिबिम्ब सूर्यके और गगन तलमें रहने वाला वह एक सूर्य क्या ये दोनों एक हो सकेंगे? अगर यों सदृशता होनेसे एक मान लिये जायें तो मनुष्य, स्त्रीके किसीके भी नेत्र जो कि दो दो होते हैं वे दोनों नेत्र एक समान हैं या नही? एक समान नजर आ रहे। किसी एक पुरुषके दो नेत्र दायाँ बायाँ दोनों एक तरह हैं तो एक तरह हैं तो एक तरह होनेसे एक न बन जायेंगे। इसी तरह जल पात्रोंमें उठे हुए जलबिम्ब सूर्यबिम्ब और गगनतलमें रहने वाला सूर्य, ये दोनों एक समान हैं, इनका आकार सदृश है तो भी यह एक न हो जायगा। और, यह भी नही कह सकते कि जलपात्रमें जो जलभानु विकार आया है, प्रतिबिम्ब आया है वह सूर्यके कारण आया है। इस कारण एकपना हो जाय, क्योंकि यों एकपना माननेसे वृक्ष और वृक्षकी छायामें भी एकपना आ जाना चाहिये। इससे यह बात कहना कि जैसे जलपात्रमें भिन्न भिन्न सूर्य दिखाई देते हैं। है सूर्य एक। इसी तरह भिन्न भिन्न श्रोत्रोंमें नाना वर्ण सुनाई देते हैं। है वर्ण केवल एक। नित्य व्यापक। यह बात यों नही बनी कि दृष्टान्तमें वे जल प्रतिबिम्ब अनेक हैं और उस समय वे अनेक जल प्रतिबिम्ब ही दिखाई देते हैं। सूर्य नही दिखाई देता।

सूर्यप्रतिबिम्बोंकी उत्पत्तिके साधनोंपर विचार— शंकाकार कहता है कि उन सूर्यके प्रतिबिम्बोंको सूर्यसे भिन्न माननेपर फिर उन प्रतिबिम्बोंकी उत्पत्ति कैसे होगी? यदि सूर्य न्यारी चीज मानते हो और जलपात्रमें उठने वाला प्रतिबिम्ब न्यारा पदार्थ मानते हो तो यह सम्बन्ध बतावो कि उन प्रतिबिम्बोंकी उत्पत्ति होगी कैसे? समाधानमें कहते हैं कि पानी सूर्य आदिक जो कुछ प्रतिबिम्बकी निज सामग्री है उस सामग्रीसे प्रतिबिम्बोंकी उत्पत्ति हो जायगी। यह तो निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धकी बात है। पूछा जाय कि दर्पणमें जो मुखका प्रतिबिम्ब आया है वह मुख प्रतिबिम्ब न्यारा है और मुख न्यारा है या नही? एक तो न हो जायेंगे। यदि एक बन जाय तो फिर दर्पणमें जो मुखका प्रतिबिम्ब आया है उसमें जो मुख बना है उस मुखपर भोजन करते जावो। दर्पणपर भोजन रखते जावो और वहाँ पेटपर जाना चाहिये। तो एक नही है। दर्पणमें आया हुआ मुख प्रतिबिम्ब इस देहपर रहने वाले मुखसे न्यारी चीज है। उन प्रतिबिम्बोंकी उत्पत्ति हुई है इन दोनों बातोंसे। वहाँ दर्पण तो उपादान है और देहका मुख निमित्त है। निमित्तका सन्निधान होनेपर दर्पण छायारूप परिणमन गया। ऐसी ही बात उन जलपात्रोंमें आये हुए प्रतिबिम्ब अनेक हैं और उनकी उत्पत्ति उपादान दृष्टिसे तो जलसे हुई है और निमित्त दृष्टिसे सूर्यसे

http://sahjanandvarnishastra.org/

हुई है पर वह सूर्य गगनतलमें ही रहता है। जलपात्रोंमें नही आता। तो ये जो प्रतिबिम्ब हुए हैं वे जल और सूर्यका अपनी सामग्री विशेषसे हुए हैं।

नैमित्तिकोंकी सदा उपलब्धि न होनेका कारण—शंकाकार कहता है कि तब तो फिर स्वच्छता विशेष होनेसे मुख या सूर्यके प्रतिबिम्बोंके आकार विकार धारण करने वाले वे जल और दर्पण आदिक क्यों नही सर्वदा उपलब्ध होते हैं ? उत्तर देते हैं कि अपनी सामग्रीका अभाव हुआ शब्दोंकी तरह। कोई विकार तो सहकारी कारणोंकी निवृत्ति होनेपर भी निवृत्त होता हुआ नही देखा जाता। और कोई विकार ऐसे होते हैं कि सहकारी साधनोंके हटनेके बाद हट जाया करते हैं। जैसे मिट्टीका घड़ा बनाया तो घड़ा बननेमें साधन क्या था ? कुम्हारका चका तो घड़ा बन चुकनेपर क्या कुम्हार व चका आदि घड़ेके साथ लगा फिरता है ? तो कोई कार्य ऐसा होता है कि कारण हटनेपर कार्य नहीं हटता है और कोई कार्य ऐसा होता है कि कारण हटनेपर कार्य भी विकार भी हट जाता है शब्दादिक ऐसे पदार्थ हैं कि शब्दके कारण हट जायें तो शब्द भी हट जायें। क्योंकि तालू आदिकका व्यापार अब नही रहा। तो यह पदार्थोंकी शक्ति अचिन्त्य है। तालू आदिक व्यापार ये हैं सहकारी कारण, उनकी निवृत्ति हो जाती है। फिर सुनाई नही देता। तो इसी तरह जो जलपात्रमें सूर्यका प्रतिबिम्ब हुआ है उसका सहकारी कारण है गगनतलमें रहने वाला सूर्य। जब हट जाता है या जलपात्र सूर्यके सन्निधानसे अलग हटा दिया जाता है तो वहां फिर सूर्यका प्रतिबिम्ब नही रहता। यह तो पदार्थोंकी अपने अपने अलग अलग स्वरूपकी बात है तो जो प्रतिबिम्ब हुए जलपात्रोंमें उनके उत्पन्न होनेका उपादान कारण तो जल है जिसका कि प्रतिबिम्ब रूप परिणमन हुआ है और निमित्त है गगनतलमें रहने वाला सूर्य। तो उस सूर्यसे और जलपात्रमें होने वाला सूर्य प्रतिबिम्ब बिल्कुल अलग है। यद्यपि अन्वय व्यतिरेक है। सूर्यके साथ जल सूर्यबिम्बोंमें सूर्य बिम्ब नहीं रहता। ऐसा अन्वय व्यतिरेक होनेपर भी सूर्यमें यह सूर्य प्रतिबिम्ब बिल्कुल भिन्न चीज है। तो यह कहना भी ठीक नही बनता कि जलपात्रोंमें अनेक सूर्य दिखते हैं तिसपर भी सूर्य वास्तवमें एक है। इसी तरह तालू आदिकके व्यापार होनेपर अनेक वर्ण सुनाई देते फिर भी वर्ण एक ही है यह बात घटित नही होती। जो बात सर्व जनसाधारणके चित्तमें सुगम समाई हुई है; यथा कि तालू आदिकका व्यापार करनेसे वर्णकी उत्पत्ति हो जाती है। इस ही सुगम बातको मेटकर एक कठिन बात जिसमें कि नाना विचार बनाने पड़ते हैं। विचार बनाना और कठिन बात असम्भव बातको सिद्ध करना यह विवेक नही है। आगमकी प्रमाणता शब्दके नित्य होनेके कारण नही है, किन्तु गुणवान वक्ता होनेके कारण आगमकी प्रमाणता हुआ करती है।

सौर्य तेजसे चाक्षुष तेजकी नाना रूपोंमें प्रवृत्तिके मंतव्यकी मीमांसा—

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शङ्काकार यहाँ यह कह रहा था कि जलमें सूर्यके प्रतिबिम्ब यदि सूर्यसे अलग चीज हैं तो उन प्रतिबिम्बोंकी उत्पत्ति किससे होती है और फिर वे सदैव क्यों नहीं रहा करते उसका उत्तर दिया गया है कि उन प्रतिबिम्बोंकी उत्पत्ति जल और सूर्य आदिक सामग्री विशेषसे हुई है और वे सदा यों नही पाये जाते कि कोई विकार तो ऐसे होते हैं कि सहकारीकी निवृत्ति होनेपर भी निवृत्त नही होते अर्थात् कारणके हटनेपर भी कार्य नहीं हटता। जैसे घट आदिक, घड़ा कार्य बन गया और वह बना है दण्ड चक्र आदिकसे तो दण्ड चक्र आदिक अब हट गए तो भी घड़ा बना हुआ है। घड़ेका हटाव नही हो रहा पर कोई कार्य ऐसे होते हैं कि सहकारी कारणके हट जानेपर वे हट जाया करते हैं। जैसे तालू आदिकका व्यापार शब्दविकारका कारण है, तो तालू आदिकका व्यापार बन्द हो जाय, हट जाय तो शब्द भी सुननेमें नही आता अथवा जैसे माला पहिनना एक यह प्रसन्नताका कारण होता है तो माला उतार देनेपर उस प्रकारकी प्रसन्नता भी हट जाती है। दर्पणमें हाथका प्रतिबिम्ब आया। हाथके हटते ही दर्पणका प्रतिबिम्ब हट जाता है इसी प्रकार यहां सूर्यप्रतिबिम्ब होनेपर सूर्यके हटते ही या जलपात्रके वहांसे अलग कर देनेपर प्रतिबिम्ब भी हट जाया करता है। शङ्काकार कहता है कि जलमें जो प्रतिबिम्ब है वह प्रतिबिम्ब ही नही वह तो सूर्य है और वहां सूर्य सम्बन्धी तेजसे चक्षुका तेज भिन्न भिन्न जगहमें प्रवृत्त हुआ है तो भले ही सूर्य भिन्न भिन्न जल-पात्रोंमें प्रकट हुए हैं लेकिन अनेक प्रकारसे वे सूर्यके प्रदेश उस एक सूर्यको ही ग्रहण कर रहे हैं। उत्तर देते हैं कि उस समय जब कि कोई पुरुष जलपात्र में प्रतिबिम्ब निरख रहा है तो वह पुरुष सूर्यकी जगहमें रहते हुए रूपसे सूर्यका ग्रहण नही कर रहा है, किन्तु वह जलपात्रको ही निरख रहा है। यदि कहो कि चाक्षुष तेज नानारूपोंमें प्रवृत्त होता है तो यह बात बिलकुल असङ्गत है, नाना रूप हो वहां है और उन नानाको जान रहा है, एक सूर्यको जान रहा है और नानारूपसे जान रहा है इसमें कोई प्रमाण नही है। चक्षुकी किरणें जलसे सम्बद्ध होकर फिर सूर्यके प्रति जाना हो ऐसा प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणसे प्रतीत नही होता। चक्षुकी किरणें विषयोंके प्रति नही जाना करती। चक्षुमें किरणें नही हैं। जैसे अन्य इन्द्रिय इन्द्रिय हैं इसी तरह चक्षु भी एक इन्द्रिय है। जैसे अन्य इन्द्रियसे कुछ भी अंग अवयव अणु स्कंध बाहर निकलकर विषयोंमें रमे ऐसा नही होता। इसी प्रकार चक्षुसे भी कुछ भी निकलकर पदार्थोंमें जाय ऐसा भी नहीं होता।

शब्दोंकी अनेकता और शब्दोंसे अर्थप्रतिपत्ति होनेमें सादृश्य प्रत्यभिज्ञानका सहयोग—शंकाकार कहता है कि शब्दको नित्य एक सिद्ध न करनेके लिए जो एक सूर्यमें और शब्दमें भेद डाला है, शब्दको अनित्य मानने वालोंने कि जो सूर्य नाना देशोंमें रहने वाले पुरुषोंके द्वारा भिन्न-भिन्न देशोमें जाने जाते हैं तो ऐसी बात शब्दमें नही है। सो सूर्य एक तो रह सकता है पर शब्द वर्ण एक नही। सो बात यह है कि देशसे जो सूर्यकी भिन्नता है वह आनुमानिक है। उसका बाधक तो प्रत्यक्ष है। सूर्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गमन करता है और कहींसे कही चला जाता है इसी प्रकार शब्द गमन करता है और कहींसे कहीं जाया करता है, ऐसी समता नही बन सकती, क्योंकि सूर्यके गमन करनेमें प्रत्यक्ष ही बाधक है, प्रत्यक्षसे तो सूर्य गमन करता हुआ दिखाई नही देता शंकाकारका यह कहना भी अयुक्त है क्योंकि यदि ऐसा नियम हो कि प्रत्यक्ष ही अनुमानका बाधक होता है, अनुमान प्रत्यक्षका बाधक नही होता ऐसा नियम यदि बना दिया जाय तब तो सूर्य चन्द्र आदिकमें स्थिरताकी प्रत्यक्षता एक देशसे दूसरे देशमें चन्द्र सूर्य जाया करते है इसको सिद्ध करने वाले अनुमानके द्वारा यह प्रत्यक्ष बाध्य नही होता लेकिन ऐसा तो नही है। कहीं अनुमानका विषय प्रत्यक्षसे बाधा जाता है और कहीं प्रत्यक्षका विषय अनुमानसे बाधा जाता है। जैसे यहाँ प्रत्यक्षसे तो यों नजर आता कि चन्द्र सूर्य जहाँ है वही हैं, वे गमन नही किया करते लेकिन अनुमानसे उसमें बाधा आती है। एक देश से दूसरे देशमे जा चन्द्र पहुँच जाता है इससे यह सिद्ध होता है कि सूर्य चन्द्र स्थिर नही हैं, ये चला करते हैं इनमें गतिकी शक्ति पायी जाती है। यदि कहो कि यहाँ प्रत्यक्ष करता ही नही है किन्तु बाधिक विषय भी स्थिरताको निराकृत कर देता है। उत्तरमें कहते हैं कि यह बात प्रकृत बातमें भी समान है। जैसे नखको काट दिया और कुछ समय बाद फिर नख बढ़ जाते हैं, तो जो नख कट गया था पहिले उसके समान है यह नख जो अब और बढ़ा है, न कि वही नख है। अरे वह नख तो कट करके गेर ही दिया अलग ही हो गया। वह तो यह नही है, तो जिस सादृश नखमें एकताका बोध होता है तो इस एकताकी प्रतीति बाधित विषय हो जाता है अर्थात् बढे हुए नखमें यह वही नख है ऐसा ज्ञान बाधित है क्योंकि यह नख तो उसके सदृश है जो पहिले था। उस सदृशताकी रीतिसे नखका नानापन सिद्ध होता है, सो यह प्रतीत एकत्व बाधित बन गया। इसी प्रकार शब्दोंमें जो हम शब्द सुना करते हैं वे शब्द वही नही है जो पहिले थे किन्तु पहिले बोले गए शब्दके समान हैं ये शब्द। शब्द एक नित्य व्यापक नही है।

शब्दोंकी सावयवताका प्रतिपादन – शंकाकार कहता है कि शब्दमें तो यही बुद्धि होती है कि यह वही है। सदृशताकी कोई बुद्धि नही करता कि यह ग शब्द पहिले बोले गये, ग शब्दके समान है। तो सादृश्य इन गकार आदिक शब्दोंमें यही है। ये वर्ण तो अवयव सामान्यके बिना है। इन वर्णोंमें कोई अवयव ही नही है। तो सदृशता की बात कैसे कही जाय? कोई चीज किसी दूसरी चीजके समान है यह बात तब ही कही जा सकती है जब उन दोनों चीजोंमें अवयव पाये जाते हैं और फिर वे अवयव सदृश मिलते हैं पर वर्णोंमें तो अवयव होते ही नही हैं। समाधान करते हैं कि यह बात अयुक्त है। वर्णोंमें अवयव सामान्य है। वह सदृशताकी प्रतीतिसे प्रसिद्ध हो जाता है। वर्णोंमें अवयव है अन्यथा सदृश शब्दोंकी प्रतीति न हो सकती थी। यह वर्ण पूर्व बोले गए शब्दोंके सदृश है। ऐसी सदृशताका जो बोध होता है वह अवयवोंके कारण होता है। शब्द जो बोले गये हैं वे कार्य हैं और उनमें अंश हैं उनकी समानता है इसलिए

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सादृश्य बोधसे अर्थका ज्ञान हो जाता है। शंकाकारने जो यह कहा था कि जैसे एक देवदत्त क्रमसे गमन करता है तो बहुत देशोंमें चल फिर आनेपर भी क्रमसे गमन करने पर भी यही वही देवदत्त है ऐसा बोध होता है, तो ऐसे क्रम भेदसे भिन्न-भिन्न देशोंको प्राप्त होता हुआ देवदत्त नाना तो नही हो गया। वह एक ही है इसी प्रकार शब्दक्रम से भिन्न देशको जा करके भी उसमें भेद नही हो जाता, वहाँ एकता हो है। इस प्रकार दृष्टान्त बनाना यों युक्त नही है कि देवदत्तमें तो है एकत्व प्रत्यभिज्ञानकी बात और शब्दमें है सादृश्य प्रत्यभिज्ञानकी बात देवदत्तमें तो यह ज्ञान होता है कि यह वही है, पर यहाँ तो यह वर्ण उसके सदृश है ऐसा प्रत्यय होता है सादृश्यके ज्ञान होनेसे कहीं एक न मान लेना चाहिए। जो सादृश्यके बोधसे मान लिया जाय तो गाय और रोझ ये भी सदृश लगते हैं। इनमें सादृश्य प्रत्यभिज्ञान जगता है तो यह भी सादृश्य बन बैठेगा इसकारण वर्ण उत्पन्न होता है और ये वर्ण पूर्व बोले गए वर्णोंके समान हैं ऐसी व्यवस्था माननेपर कहीं भी व्यवस्था विरुद्ध विवाद नहीं हो सकता।

शब्दोंका निष्पाद व गमन तथा अन्य शब्दव्यञ्जनासे तरङ्गप्रवाह—शब्द उत्पन्न होते हैं और जिन पुद्गल स्कन्धोंमें शब्द परिणमन होता है वह शब्द पुद्गल स्कंध जाया भी करता है और शब्द पासकी भाषा वर्गणा पुद्गल स्कन्धमें परिणत शब्दसे बनाकर वह अगले शब्दको बनाकर यों तरंगरूपसे भी शब्द जाया करते हैं। यहां शङ्काकार कह रहा है कि ऐसा कहना कि शब्द श्रोताके कानोंके पास जाता है, शब्द वक्ताके पास जाता है अथवा शब्दोंकी तरह बनकर ये शब्द जाया करते हैं। यह बात ठीक नही बैठती क्योंकि शब्द अमूर्त है और अमूर्त शब्दका गमन नही बन सकता। शब्दका आगमन अप्रमाणित है किसी भी प्रमाणसे सिद्ध नहीं है और वह कल्पनाकी चीज है। शब्दमें मूर्ति होना, शब्दका स्पर्श होना यह सब कल्पनाकी बात है। शब्द तो हैं सदैव और उनका भींट आदिकसे अभिभव हो जाता है। तो जब शब्द स्पर्शन इन्द्रियके द्वारा ग्राह्य नही है और शब्दके अन्तर्भाव वर्णरूप सूक्ष्म है, निरंश है तो उन आवान्तर शब्दोंकी रचना विधि कैसे बन सकती हैं? और जब रचना नही बनती तो वर्णभेद कैसे बन सकते? इससे शब्दोंका आना मानना शब्दोंकी उत्पत्ति मानना यह प्रमाणविरुद्ध है। वह कल्पना भरकी चीज है। इस शङ्काका उत्तर करते हैं कि ये सब बातें व्यञ्जक वायुके गमनमें भी लगा सकते हैं व्यञ्जक वायुका आगमन यथार्थ नही है, अदृष्ट है, केवल कल्पना भरकी बात है। व्यञ्जक वायुमें न मूर्तपना है न स्पर्शपना है, वह तो सर्वत्र है और उसका अभिभव रहता है आदिक बातें जो जो शब्दके सम्बन्धमें कही हों ठीक उसीके पटतरके रूपमें हम यहां व्यञ्जक वायुमें भी लगा सकते हैं।

शब्दके अमूर्तत्व आदिके भ्रमका कारण—शब्द अदृश्य चीज है और ऐसा लगता है कि आकाशमें ये शब्द मालूम पड़ते हैं सो यह कह देते हैं कि शब्द

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आकाशका गुण है और अमूर्त है तथा आकाशकी तरह नित्य व्यापक है, ऐसा भ्रम हो गया है किन्तु सब लोगोंकी यह प्रतीति है कि शब्दकी उत्पत्ति कंठ तालू आदिकके व्यापारसे होती है और इसीकारण जैसे तीव्र मंद तालू आदिकका व्यापार होता है ऐसे ही तीव्र मद शब्द उत्पन्न होते हैं। तथा तालू आदिकके ऊच नीच स्थानमें जिस प्रकारसे प्रयोग होता है उस प्रकारसे वर्णोंमें उदात्त अनुदात्त आदिक प्रकार हो जाया करते हैं, और भी देखिये जो शंकाकारने अदृष्ट कल्पना और गौरव दोष दिया है वह शंकाकारके यहाँ ही दोष आता है। अदृष्ट कल्पनाका अर्थ है कि प्रमाण प्रतीति सिद्ध नही है। शब्दका आना प्रमाण सिद्ध नही है, तो शब्दका सदा रहना प्रमाण सिद्ध नही है और यह कहना कि शब्द यदि मूर्तिक है तो उसमें गौरवता आती है। भारी वजन बन जायगा। अरे शब्द सदा है, व्यापक है तो इसमें भारपन सदा रहेगा। देखिये शब्द जो कि शब्द देशमें नही पाया जा रहा उसका आवरण करने वाला तुम मानते हो स्तब्ध-वायु, वायुका निषेध यह भी प्रमाणसे नही जाना जाता है वह कल्पना ही है और उस स्तब्ध वायुको हटाने वाली व्यञ्जक ध्वनियाँ होती हैं वह भी एक कल्पनाकी बात है। जो जो कुछ भी शब्दको नित्य माननेपर माना जायगा वे वे सब चीजें कल्पनाकी चीजें बनेंगी और इस तरहसे तो उन सब चीजोंमें शब्दोंमें आवरणोंमें, व्यञ्जकोंमें नाना शक्तियाँ माननी पड़ेंगी। बात तो सीधी यह है कि शब्द पौद्गलिक चीज है इस शब्द में माना था कि स्पर्शनसे भी जुदा है। यह कहा था कि स्पर्शमें व्यञ्जक ध्वनि जानी जाती है। शब्द नही जाना जाता है। यह भी अयुक्त बात है क्योंकि ध्वनि और शब्द में अन्तर क्या है ? अपरिणाम है। तो ये सब शब्द पौद्गलिक है क्योंकि शब्दोंका आघात होता है, शब्दोंका रुकावट किया जा सकता है और इस शब्दको कहीं रोका भी जा सकता है। इससे शब्द पौद्गलिक हैं और जैसे चक्षु आदिक के व्यापारकी क्रिया है घट इसी प्रकार तालू आदिकके व्यापारकी क्रिया है शब्द बिल्कुल स्पष्ट विदित होता है सबको चक्र आदिकका व्यापार किए बिना। कुम्हारके उस ज्ञान श्रम इच्छा आदिकके किये बिना घटकी उत्पत्ति तो नही होती है। घट इन सब व्यापारोंसे बना है इसी प्रकार तालू कंठ आदिक साधनोंके व्यापारसे ये सब कार्य बने हैं। शब्द नित्य व्यापक है और अकृत्रिम है, यह बात सही नही बैठती। तो जिन जिनमें भेद पाया जाना, जिनमें नाना दशायें पायी जाती, जिनमें अनेक रूप पाये जाते वे चीज तो कृत्रिम हैं। किसी न किसीके द्वारा की गई हैं। तो यहाँ शब्द कृतक हैं। अपौरुषेय नही हैं। जिनमें शंकाकार यह सिद्ध करनेका प्रयास करे कि आगममें जो शब्द है वह नित्य है। अपौरुषेय है। और अपौरुषेय होनेसे आगममें कहे गए शब्दोंकी प्रमाणता है।

आगमकी प्रमाणताका वास्तविक कारण— कोई आत्मा परमात्मा होता है, सर्वज्ञ होता हैं, निर्मल होता है ऐसा नही है किन्तु शब्द ही एक प्रमाणभूत है और उन शब्दोंसे फिर धर्मकी व्यवस्था बनती है। ये सब बातें कहना असंगत है यहाँ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ही देखा जा रहा है कि कुछ लोग रागद्वेषसे बहुत रहित हैं। पक्षपात किया नहीं करते हैं तो ऐसे पुरुषोंके शब्द भी प्रमाणभूत मान लिये जाते हैं। अमुक भाई इस विषयमें जो बात कहेगा, वह प्रमाणिक कहेगा ऐसी लोगोंमें श्रद्धा पाई जाती है। तो शब्द गुणवान पुरुषके द्वारा बोला गया हो वह तो प्रमाणभूत है। जब लोकमें यह देखा जाता है कि किसी पुरुषमें राग कम है किसीमें बहुत कम है, तो औपाधिक होनेपर कमी नजर आये तो उससे यह निर्णय होता है कि ये रागादिक विकार कहीं बिल्कुल ही समाप्त इनका सर्वथा अभाव हो जाता है इसी प्रकार जब लोकमें हम यह निरखते हैं कि किसीका ज्ञान बड़ा है किसीका ज्ञान उससे भी बड़ा है तो जब ज्ञानमें वृद्धि हम देखते हैं और ज्ञान है आत्माका स्वरूप। तो आत्माका स्वरूप होते हुये फिर ज्ञानमें जो वृद्धि विकाश देख रहे हैं उससे यह सिद्ध होता है कि किसी आत्मामें ज्ञान परिपूर्ण विकसित है बस ये दो बातें किसीमें भी एक आत्मामें पायी जा सकती हैं। रागादिक विकारोंका सर्वथा अभाव और ज्ञानादिक गुणविकाशकी परिपूर्णता, ये दोनों बातें जो देखी जायें वही पूर्ण ज्ञानवान पुरुष है। आप्त भगवान सर्वज्ञ किन्हीं भी शब्दोंमें कहो उन गुणवान पुरुषोंके चरण सन्निधानमें जो वार्ता उपदेश निकलता है वह प्रमाणभूत है। हां, दोषवान वक्तासे निकले हुए वचन प्रमाणभूत नहीं है, इस प्रकार आगमका जो यहां लक्षण बताया गया था कि आप्तके वचन आदिक कारणसे जो अर्थ ज्ञान होता है उसे आगम कहते हैं। यह बात पूर्णतया संगत हो जाती है। सर्वज्ञ आप्त है कोई और उसके निकट रहने वाले जो महापुरुष गणधर आदिक हैं उनकी ध्वनिसे अपने ज्ञानकी पुष्टता समीचीनता दृढ़ता उत्पन्न करते हैं फिर उनके प्रवाहसे उन गणधरोंने किन्हीं आचार्योंको बताया, उन आचार्योंने किन्हीं अन्य आचार्यों को बताया। इस तरह परम्परासे गुणवान पुरुषोंके द्वारा प्रणीत जो धर्मशास्त्र हैं वे प्रमाणभूत होते हैं। यों परोक्ष प्रमाणके भेद स्मृति प्रत्यभिज्ञान तर्क अनुमान और आगम प्रमाणता बनाकर इस समय आगम प्रमाणकी प्रमाणता बतायी जा रही है। जैसे स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान, ये परोक्ष होकर भी ज्ञाताके उपभोगमें सब स्पष्ट प्रमाणभूत विदित होता है इसी प्रकार आगम भी परोक्षभूत होकर भी आगम प्रणेताके निर्दोषपनकी श्रद्धा करने वाले मनुष्योंके उपयोगमें प्रमाणभूत ही है इसप्रकार ज्ञानकी यहां प्रमाणता सिद्ध की जा रही है।

Version 1